फरवरी 2026

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 90 | अंक- 2 | प्रति - ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

13 ▸ आस्तिकता का वास्तविक अर्थ
24 ▸ मनुष्य का वास्तविक वैभव है संस्कार
44 ▸ सामाजिक समरसता का आदर्श
61 ▸ धर्म का जीवन-बोध

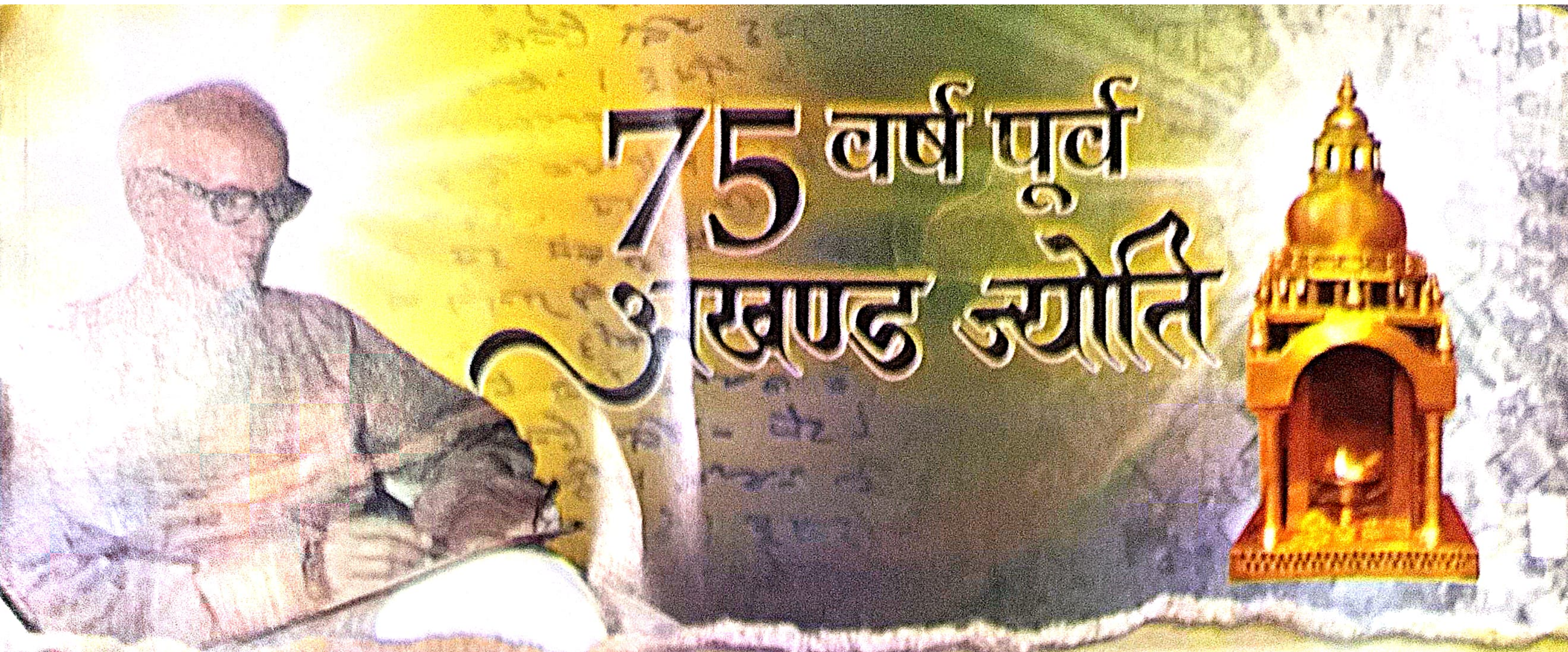

75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

आदर्श जीवन जिएँ

जीवन दो प्रकार का होता है, एक तो भौतिक तथा दूसरा आध्यात्मिक। वैज्ञानिकों का कथन है कि विचारना, जानना, इच्छा करना, साँस लेना इत्यादि जो कार्य हैं,वही जीवन है। परंतु यह जीवन अमर नहीं होता। ऐसा जीवन दुःख, सुख, चिंता , आपत्ति, विपत्ति, पाप, बुढ़ापा, रोग इत्यादि का आखेट बना रहता है। अतएव प्राचीन महर्षियों, योगियों और तपस्वियों ने, जिन्होंने अपने चित्त और इंद्रियों को अपने वश में करके त्याग और तप, आरोग्य और अभ्यास इत्यादि के बल से,अपनी आत्मा को पहचान लिया है, निश्चयपूर्वक कहा है कि जो आत्मा में रत है,केवल मात्र वही स्थायी और असीम आनंद एवं अमरत्व प्राप्त कर सकता है उन्होंने मनुष्यों के भिन्न-भिन्न स्वभाव,योग्यता और रुचि के अनुसार आत्म-साक्षात्कार के लि विभिन्न निश्चित मार्ग बतलाया है।जिन लोगों को महात्माओं में, वेदों में और गुरु के वचनों अटूट श्रद्धा है,वे आध्यात्मिक और सत्य के मार्ग पर निर्भीक विचरते हैं और स्वतंत्रता, पूर्ण या मोक्ष प्राप्त करते हैं, वे लौटकर फिर मृत्युलोक में नहीं आते, वे सच्चिदानंद ब्रह्म में अपने ही स्वरूप में स्थिर रहते हैं। यही मानव-जीवन का ध्येय एवं परम उद्देश्य है,यही अंति लक्ष्य है, जिसके अनेक नाम यथा—निर्वाण, परमगति, परमधाम और ब्राह्मी स्थिति। आत्म साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करना ही मनुष्य का परम कर्तव्य है।

(अखण्ड ज्योति, फरवरी 195

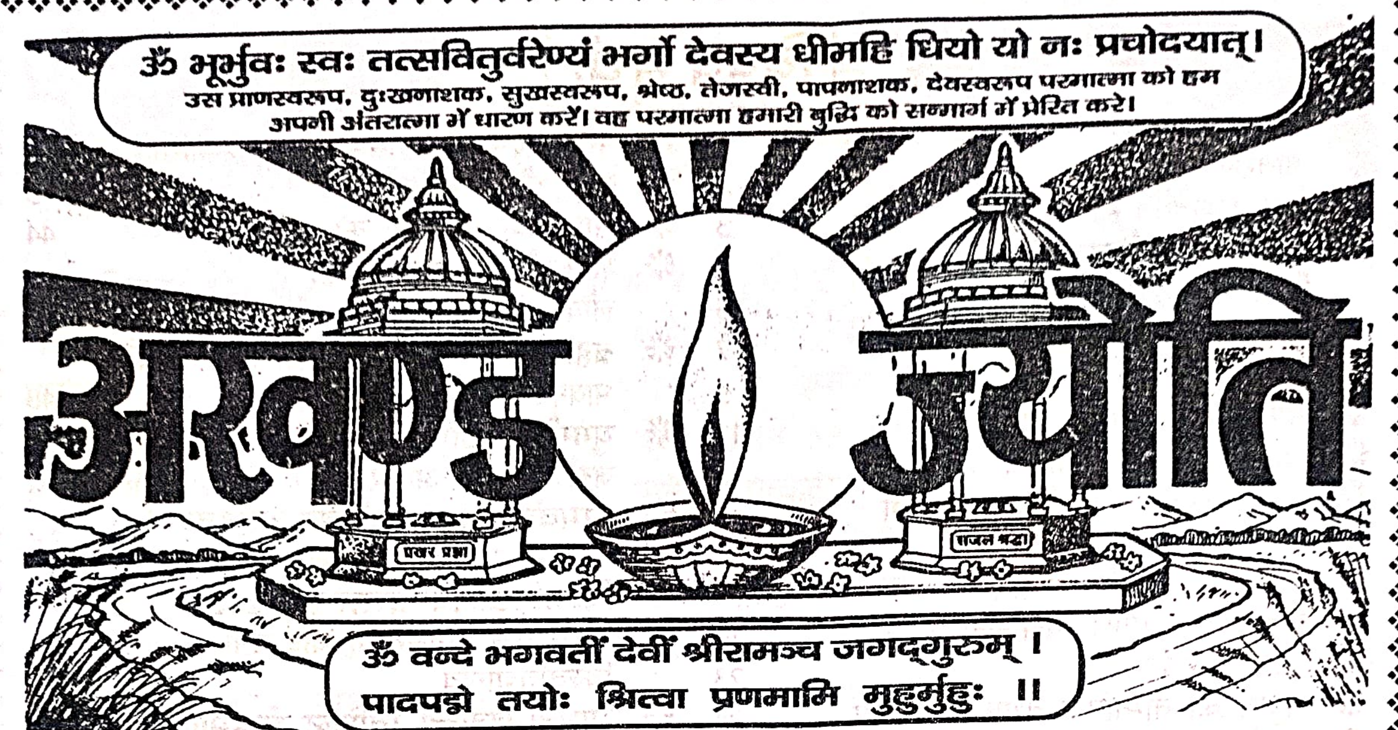

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ0 प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा (281 003)
दूरभाष नं0 (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं0 9927086291, 7534812036,
7534812037, 7534812038, 7534812039
व्हाट्सएप नं. 9927086290
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	90
अंक	:	02
फरवरी	:	2026
माघ-फाल्गुन	:	2082
प्रकाशन तिथि	:	01.01.2026

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-

प्राण प्रत्यावर्तन साधना

(क्रमशः)

प्राण प्रत्यावर्तन साधना—प्राण के परिष्कार, परिवर्तन, आध्यात्मिक प्राण-ऊर्जा के अनुदान-वितरण का आधार बनी। देवात्मा हिमालय की सघन दिव्यता में परमपूज्य गुरुदेव अपनी तप-साधना संपूर्ण करके शांतिकुंज वापस लौटे थे। वंदनीया माताजी की महासाधना भी संपूर्ण हो चुकी थी। अब शांतिकुंज के शिव-शक्ति ने अपनी शिष्य-संतानों के प्रति उमड़ते वात्सल्य प्रेम से सभी को सिंचित करने का निश्चिय किया।

प्राण प्रत्यावर्तन साधना—इसी निश्चित निर्धारण का परिणाम थी। स्नेहशील गुरुपिता, वात्सल्य प्रेम से परिपूर्ण आध्यात्मिक माता—प्राणप्रिय संतानों को अपनी प्राण-ऊर्जा का आध्यात्मिक प्रसाद सौंपना चाहते थे। उनके आमंत्रण पर देश के कोने-कोने से अनेकों आए। धरती के कोने-कोने से भी आने वालों की संख्या कम नहीं थी। जो इसमें भागीदार बने; वे अद्‌भुत, आश्चर्यजनक एवं अलौकिक-आध्यात्मिक अनुभूतियों का अनुभव पाए बिना न रह सके। इस साधना में आध्यात्मिक अलौकिकता की सृष्टि व वृष्टि हुई थी।

युगऋषि गुरुदेव उन दिनों अपनी आँखों में काला चश्मा पहनते थे। किसी को भी उनकी आँखों की ओर देखने की अनुमति न थी। इसी तरह उनके पाँव छूने की अनुमति भी किसी को न थी। उस समय उनके रोम-रोम में ऊर्जा का तीव्र प्रवाह था, जो स्पर्श करने वाले को विद्युत-स्पर्श के आघात का अनुभव दे देता था। इस साधना में जो भागीदार हुए, उन सबको आंतरिक अनुभवों की दिव्यता मिलने के साथ; उनके शरीर के पुराने रोग, मानसिक पीड़ा व उनके परिवार की समस्याएँ भी विदा हो गईं। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

आवरण—1	1
आवरण—2	2
प्राण प्रत्यावर्तन साधना	3
विशिष्ट सामयिक चिंतन	
विज्ञान की फिसलती बुनियाद	5
भावनाओं के उत्थान का आधार—प्रेम	7
गुरु की महिमा	9
समदर्शी संत श्री रमण महर्षि	11
आस्तिकता का वास्तविक अर्थ	13
पर्व विशेष—संत रविदास जयंती	
दिव्य संत—संत रविदास जी	16
हमारा युग निर्माण सत्संकल्प	
हमारा युग निर्माण सत्संकल्प	19
ईश्वर समर्पण	23
मनुष्य का वास्तविक वैभव हैं संस्कार	24
अलौकिक विभूतिसंपन्न संत गजानन महाराज	26
धनार्जन की कला भी धार्मिक बने	28
संगीत केवल मनोरंजन नहीं	30
ज्ञानशक्ति का गौरव	32
संयम अपनाएँ, स्वास्थ्य पाएँ	33
खुश रहें, खुशियाँ बाँटें	35
वाणी के विविध आयाम	37
परमपूज्य गुरुदेव की सकारात्मक पत्रकारिता	39
मृत्यु भी उत्सव बने	43
सामाजिक समरसता का आदर्श	44
शक्तियाँ—विध्वंसक न हों लोक-मंगलकारी हों	46
ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—203	
भावनात्मक बुद्धिमत्ता पर शोध	48
युगगीता—309	
जहाँ इच्छा हो आधार, वो हैं राजसिक कर्म	51
परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी	
उपासना-साधना-आराधना	53
विश्वविद्यालय परिसर से—248	
सांस्कृतिक विरासत का केंद्र बना विश्वविद्यालय	59
साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला	
धर्म का जीवन-बोध	61
अपनों से अपनी बात	
प्रज्ञा साहित्य को क्षेत्रों में पहुँचाना—युग की आवश्यकता	64
जन्म शताब्दी वर्ष आ गया (कविता)	66
आवरण—3	67
आवरण—4	68

आवरण पृष्ठ परिचय

अखिल विश्व गायत्री परिवार की आराध्या परम वंदनीया माताजी की 100वीं जयंती एवं दिव्य अखंड दीप के प्राकट्य के 100 वर्ष पूर्ण

फरवरी-मार्च, 2026 के पर्व-त्योहार

रविवार	01 फरवरी	संत रविदास जयंती/पूर्णिमा
शुक्रवार	13 फरवरी	विजया एकादशी
रविवार	15 फरवरी	महाशिवरात्रि
गुरुवार	19 फरवरी	रामकृष्ण परमहंस जयंती
शुक्रवार	27 फरवरी	आमलकी एकादशी
सोमवार	02 मार्च	होलिका दहन
मंगलवार	03 मार्च	पूर्णिमा व्रत/धूलिवंदन
बुधवार	11 मार्च	शीतला अष्टमी
रविवार	15 मार्च	पापमोचनी एकादशी
गुरुवार	19 मार्च	नवसंवत्सरारंभ/चैत्र नवरात्र आरंभ
शनिवार	21 मार्च	गणगौर
गुरुवार	26 मार्च	श्रीराम नवमी
रविवार	29 मार्च	कामदा एकादशी व्रत
मंगलवार	31 मार्च	महावीर जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

विशिष्ट सामयिक चिंतन

विज्ञान की हिलती बुनियाद

विज्ञान एवं वैज्ञानिक चिंतन एक साधारण परंतु महत्त्वपूर्ण सोच पर आधारित है और उसी सोच ने विज्ञान को वो शक्ति एवं प्रभुत्व प्रदान किया है कि आज वैज्ञानिक परीक्षण पर खरी उतरी बात को लोग सहजता से स्वीकार कर पाने की स्थिति में रहते हैं। वो सोच है, विश्वास करो, पर बिना परखे न करो।

इसी एक सरल सोच ने, सामान्य सिद्धांत ने विगत दो सौ वर्षों में विश्व के मानचित्र को बदल करके रख दिया है। इस सोच का मूल आधार इस तथ्य पर विकसित हुआ कि यदि एक ही वैज्ञानिक परीक्षण को कहीं पर भी दोहराया जाए और उसी प्रारूप का अनुपालन किया जाए, जो मूल परीक्षण के समय किया गया था तो उसका परिणाम समान आना चाहिए।

चाहे बल्ब भारत में बना हो या जापान में, यदि वैज्ञानिक प्रक्रिया सही है तो उसे जलना चाहिए। गाड़ी का इंजन सही है तो उसे चलना चाहिए। फोन की बैटरी सही है तो उसे काम करना चाहिए।

आज संपूर्ण विश्व को प्रभावित करते वैज्ञानिक परीक्षणों के पीछे ये ही एक सामान्य सिद्धांत कार्यरत है कि आप उसे कितनी बार भी दोहराएँ, यदि प्रक्रिया एवं प्रारूप सही हैं तो परिणाम आता है और एक समान आता है। दुर्भाग्यवश विगत दिनों शोधों को प्रकाशित करने की अंधी दौड़ ने इस विश्वास को बहुत दुर्बल किया है। बायोटेक्नोलॉजी के क्षेत्र को ही लें तो वहाँ प्रकाशित आधे से ज्यादा शोधों को दोबारा किए जाने पर उनका वो ही निष्कर्ष नहीं निकलता है, जो उनके ऊपर आधारित एवं प्रकाशित शोध पत्रों में दिखाया गया है।

एमगन कंपनी जो कैंसर की दवाएँ बनाती है, उसने 53 ऐसे शोध, जिनमें कैंसर के विरुद्ध चमत्कारिक परिणाम मिलने की बात कही थी, उनमें से मात्र छह ही पुनः परीक्षण में सत्य पाए गए—ये सिद्ध कर सभी वैज्ञानिकों को चिंता में डाल दिया।

बेयर नामक दवा निर्माता कंपनी को भी 67 प्रमुख शोधों को पुनः करने पर मात्र एक-चौथाई में ही सफलता मिली। अकेले 2000 से 2010 के बीच ऐसे शोध, जिन्हें क्लीनिकल ट्रायल कहकर पुकारा जाता है और जिनसे मिलने वाले परिणामों के आधार पर बाजार में नई दवाओं की आपूर्ति सुनिश्चित हो पाती है—उन ट्रायलों या परीक्षणों में करीब 80000 से ज्यादा मरीजों को वापस लौटना पड़ा; क्योंकि वो शोध गलत सिद्धांतों पर आधारित थे।

यह निश्चित रूप से चिंता का विषय है। नोबल पुरस्कार विजेता डॉ॰ डेनियल काहनमेन ने तो यहाँ तक कह डाला कि 'विज्ञान की ट्रेन जल्दी ही दुर्घटना का शिकार होने वाली है।' उसका एक बड़ा कारण यह है कि आजकल हो रहे अधिकतर शोध 'प्राइमिंग' का परिणाम हैं।

प्राइमिंग को कुछ ऐसे समझा जा सकता है कि यदि ऐसे मानें कि हमारा मस्तिष्क एक बहुत बड़े पुस्तकालय की तरह से है और यदि कोई हमारे सामने 'दूध' शब्द कहता है तो उससे जुड़ी चीजें—गाय, दूध, घी, मक्खन, दही इत्यादि हमारे चिंतन में आना शुरू हो जाते हैं।

सरल शब्दों में कहें तो एक शब्द का उल्लेख करने पर उससे जुड़ी दूसरी चीजों का मन में उभार आना प्राइमिंग है। समस्या यह है कि आजकल की ज्यादातर शोधें 'प्राइमिंग' का परिणाम हैं। उदाहरण के तौर पर यदि एक वैज्ञानिक शोध में लोगों से पूछा जाए कि 'आपको कुत्ते से डर लगता है' और उसके तुरंत बाद एक ऐसी फिल्म दिखाई जाए जिसमें कुत्ता लोगों को काट रहा है तो अधिकतर लोग उत्तर 'हाँ' में देंगे।

आजकल की ज्यादातर शोधें कुछ इसी तरह से अपनी इच्छा के परिणामों को लाने में प्रयत्नशील हैं, जिनके कारण उनकी वैज्ञानिक सत्यता सही नहीं मानी जाती है। यही कारण है कि शोधों को दोबारा से करने पर उनके वे परिणाम नहीं मिल रहे हैं, जो मिलने चाहिए थे। ऐसी गलतियों से होने वाले दुष्प्रभाव भयावह हैं।

अकेले 2012 में OECD देशों द्वारा बायोटेक्नोलॉजी के क्षेत्र में 59 बिलियन डॉलर अर्थात 4.93 लाख करोड़ रुपये खरच किए गए और यदि वहाँ 53 शोधों में से मात्र 6 को ही पुनर्परीक्षण में सत्य पाया गया तो उससे होने वाले आर्थिक नुकसान का और यदि वो दवाइयाँ बाजार में उतर चुकी थीं तो होने वाले शारीरिक नुकसान का अनुमान—हम सहज ही लगा सकते हैं।

वर्तमान समय में एक शिक्षक से लेकर चिकित्सक के विषय में प्रगति के मानदंड शोध पत्रों के प्रकाशन पर निर्भर हैं। NAAC जो विश्वविद्यालयों के मूल्यांकन हेतु बनाया गया परिषद् है, वो प्रतिशैक्षणिक सदस्य 10 से ज्यादा शोधपत्रों के प्रकाशन पर जोर देता है। प्रत्येक विश्वविद्यालय के आचार्य से यह अपेक्षा है कि वो 5 वर्षों में न्यूनतम इतने शोधपत्र प्रकाशित करेंगे।

इतनी कम अवधि में इतने ज्यादा शोधों को प्रकाशित करने की होड़ ऐसे तरीकों के इस्तेमाल की ओर वैज्ञानिक समुदाय को ले जा रही है, जहाँ प्रकाशन के लिए व्यक्ति अपने आँकड़ों से छेड़छाड़ करने के लिए विवश है।

परिणाम स्पष्ट है। ऐसे शोध प्रकाशित होते हैं, जिनको दोबारा दोहराए जाने पर उनका कोई परिणाम निकलकर नहीं आता है और ये शोधों की वैज्ञानिक बुनियाद को सिरे से नकारता प्रतीत होता है। इसके साथ ही प्रकाशकों की सोच में आया बदलाव भी गलत शोध अध्ययनों के होने के पीछे का बड़ा कारण है।

4600 से ज्यादा शोधों को देखने पर एडिनबरो विश्वविद्यालय के अध्ययनकर्त्ताओं को यह पता चला कि शोध-पत्रिकाएँ नकारात्मक परिणामों वाले शोधों को प्रकाशित नहीं करना चाहती हैं। कहने का अर्थ है कि यह दवाई लेने से ये फायदा हुआ—ऐसे शोध तो प्रकाशित हो जाते हैं, पर फायदा नहीं हुआ—ऐसा परिणाम आने पर शोध-पत्रिकाएँ उन्हें रिव्यू हेतु, समीक्षा हेतु भेज देती हैं।

सरकारी नियामकों द्वारा जल्दी-जल्दी शोध पत्रों के प्रकाशन का दावा फिर शोध करने वालों को मजबूर करता है कि वो परिणामों को बदल करके भेजें। ये सारे घटनाक्रम ऐसे वातावरण को निर्मित कर रहे हैं, जहाँ विज्ञान की मूलभूत सोच कि वो परीक्षण पर खरा उतरता है, वो नींव बुरी तरह से हिलती नजर आती है। समय रहते वैज्ञानिक समुदाय इस गलती से उबर जाए तो श्रेष्ठ है, नहीं तो जैसा प्रोफेसर काहनमैन ने कहा—"विज्ञान की ट्रेन का टकराना कहीं सुनिश्चित न हो जाए।" □

देयानि स्ववरो पुंसा स्वेन्द्रियाण्यखिलानि वै।
असंयतानि खादंतीन्द्रियाण्येतानि स्वामिनम्॥

अर्थात मनुष्य को इंद्रियों को अपने वश में रखना चाहिए। असंयत इंद्रियाँ स्वामी को खा जाती हैं।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

भावनाओं के उत्थान का आधार-प्रेम

जिसमें ऊँचा आदर्श और शुद्धता हो, वही सच्चे प्रेम के योग्य होता है। भाई-बहन, पति-पत्नी, मित्र सभी संबंधों में यदि प्रेम सच्चा है, तो वह एकदूसरे को ऊँचा उठाने वाला, आत्मा को उन्नत करने वाला होना चाहिए। सच्चा प्रेम तब ही टिकता है, जब वह त्याग और अनुशासन से भरा हो। यदि वह वासना, स्वार्थ या मोह से जुड़ गया, तो उसका स्वरूप बदल जाता है।

मोह, लालसा और आसक्ति से प्रेरित प्रेम, बंधन बन जाता है—जिससे न तो आत्मिक उन्नति होती है, न ही वास्तविक सुख की अनुभूति। प्रेम का उद्देश्य आत्मविकास और दूसरों की आत्मा को ऊँचाई पर ले जाना है। इसके लिए संयम, विवेक और पवित्रता जरूरी है। सच्चे प्रेम में न तो अधिकार का भाव होता है और न ही स्वामित्व का। उसमें होता है केवल देने का भाव, निस्स्वार्थ सेवा और त्याग।

यदि कोई व्यक्ति प्रेम में डूबा है, तो उसमें एक पवित्र आकर्षण होता है, जो प्रेरणा देता है, बंधन नहीं बनाता, लेकिन यदि वह आकर्षण शारीरिकता या भावनात्मक निर्भरता में बदल जाए, तो वह पतन का कारण बनता है, इसलिए प्रेम का प्रयोग केवल उच्च स्तर पर ही करना चाहिए—जहाँ आत्मा की पुकार, सेवा का भाव और आदर्शों की रक्षा होती है। नारी-पुरुष, माता-पिता और संतान, गुरु और शिष्य, देश और समाज के लिए प्रेम उसी समय सार्थक होता है, जब वह लोक-मंगल से जुड़ा हो।

छोटे स्वार्थों, वासनाओं और लालसाओं से परे उठकर जब प्रेम का स्वरूप निर्मल, आदर्श और त्यागमय हो, तब वह यथार्थ में 'प्रेम' कहलाने के योग्य बनता है। वह प्रेम न केवल दो आत्माओं को जोड़ता है, बल्कि समूचे समाज को दिशा देने में सक्षम होता है। सच्चे, सहृदय और सज्जन लोग दूसरों के साथ पूरी निष्ठा, समर्पण और स्नेहभाव से जुड़ते हैं। इस जुड़ाव में अपने स्वार्थ या लाभ की भावना नहीं होती।

यह एक मानसिक और भावनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति दूसरों के दुःख को भी अपना ही दुःख मानकर सहायता करता है। यह संबंध आत्मीयता, संवेदनशीलता और करुणा पर आधारित होता है। भावुकता का मतलब है किसी बात को भावों की गहराई से महसूस करना। जैसे साहित्य, संगीत, नाटक, चित्र आदि के माध्यम से भावनाएँ व्यक्त होती हैं, वैसे ही सामाजिक जीवन में भी यह भावुकता लोगों के बीच सच्चे संबंध बनाने में सहायक होती है।

जब लोग एकदूसरे के सुख-दुःख में साझेदारी करते हैं, तो समाज में आत्मीयता और सौहार्द का वातावरण बनता है। अक्सर देश और समाज में यह भावना कमजोर हो जाती है। लोग केवल अपने स्वार्थ, आराम और सुविधा में डूबे रहते हैं, लेकिन यदि हर व्यक्ति यह संकल्प ले कि वह दूसरों की सहायता करेगा तो दुनिया बहुत बेहतर बन सकती है।

दूसरों के दुःख को महसूस करना, उनकी सहायता करना और उन्हें सहारा देना ही सच्ची मानवता है। मानवता का यह गुण व्यक्ति को न केवल सामाजिक रूप से मूल्यवान बनाता है, बल्कि आत्मिक संतोष भी देता है।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

इसके विपरीत, जो लोग केवल अपनी सुविधा और सुख के बारे में सोचते हैं, वे अंततः अकेले और असंतुष्ट रह जाते हैं। जब व्यक्ति अपने आत्मिक स्तर को ऊँचा उठाता है, तो वह दूसरों के कष्टों को समझने और हल करने की क्षमता पा लेता है। यह केवल दान या सेवा की बात नहीं है, बल्कि एक संवेदनशील जीवन-दृष्टि की आवश्यकता है। इसलिए जब हम दूसरों की पीड़ा को देखकर चुप नहीं रहते और उनकी सहायता के लिए आगे बढ़ते हैं, तभी समाज में सच्चा परिवर्तन आता है।

यही सच्चा धार्मिक और आध्यात्मिक मार्ग है, जो हमें अपने भीतर की मानवता से जोड़ता है। गिरते और थकते व्यक्ति को ऊर्जा देने के लिए प्रबल शक्ति की जरूरत होती है। प्रेम का प्रभाव इतना गहरा होता है कि वह मनुष्य को थकान, निराशा और असफलता के अंधकार से निकाल सकता है। प्रेम एक सशक्त प्रेरणा है, जो मनुष्य को चलाने और ऊँचाई तक ले जाने वाली सर्वोत्तम शक्ति है।

मन को जीतने और प्रसन्न रखने का सबसे सरल मार्ग प्रेम है। किसी को रास्ते पर लाना हो, सच्चाई के पथ पर चलाना हो, तो प्रेमपूर्ण व्यवहार से किया जाए। शुष्क नैतिक प्रवचन की अपेक्षा प्रेमभरा व्यवहार अधिक प्रभावशाली होता है। इसलिए जीवन में प्रेम-भावना का विस्तार करना जरूरी है।

प्रेम करना कोई कमजोरी नहीं है, यह उच्चतम शक्ति है। सच्चा प्रेम साहस, संयम, सहानुभूति, त्याग, सहिष्णुता और उदारता जैसे श्रेष्ठ गुणों से भरा होता है। केवल भावना नहीं, व्यवहार में भी वह झलकना चाहिए। हमारा प्रेम सीमित, स्वार्थ से प्रेरित और परिस्थितियों पर आधारित नहीं होना चाहिए। यह ऐसा हो तो वह केवल एक दिखावा बनकर रह जाएगा।

प्रेम को सच्चे अर्थों में जीवन में उतारने के लिए जरूरी है कि हम ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, अपमान, क्रोध, मोह और संकीर्णताओं से ऊपर उठें। हमें लोगों की कमजोरियों को क्षमा करना सीखना चाहिए, उनके दु:ख-सुख में साझेदारी करनी चाहिए और उनका भला करने का भाव रखना चाहिए। यही सच्चा प्रेम है।

जब व्यक्ति समाज, देश और समस्त मानवता के कल्याण के लिए कार्य करता है, तब उसका प्रेम व्यापक हो जाता है। उसे किसी एक व्यक्ति, जाति या समुदाय तक सीमित नहीं रखना चाहिए। प्रेम वह प्रकाश है, जो अँधेरे में भी रास्ता दिखाता है, वह सच्चा दीपक है, जो बिना तेल के भी जलता है; क्योंकि उसमें आत्मा का प्रकाश होता है। हमें चाहिए कि प्रेम का दीप जलाए रखें और उस दीप की लौ से अपने आस-पास को आलोकित करें। वही व्यक्ति सच्चा प्रेमी कहलाता है, जो स्वयं जल कर दूसरों को उजाला देता है। ❑

मोक्ष अर्थात मुक्ति। कषाय-कल्मषों से मुक्ति, दोष-दुर्गुणों से मुक्ति, भव-बंधनों से मुक्ति। यही भवबंधन है, जो मनुष्यों को लिप्साओं और कुत्साओं के रूप में अपने बंधनों में बाँधता है। यदि आत्मशोधनपूर्वक इसे हटाया जा सके, तो समझना चाहिए कि जीवित रहते हुए भी मोक्ष की प्राप्ति हो गई।

—परमपूज्य गुरुदेव

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

गुरु की महिमा

गुरु की महिमा अपरंपार है। यह सत्य समस्त आध्यात्मिक शास्त्रों ने प्रकाशित किया है। गुरु की महिमा को प्रकाशित करने वाले ग्रंथों में गुरुगीता का स्थान सर्वोपरि है। गुरुगीता सद्‌गुरु की महिमा के विषय में भगवान शिव और माँ पार्वती के दिव्य संवाद का महाग्रंथ है। उक्त ग्रंथ में भगवान शिव माँ पार्वती से कहते हैं कि जो गुरु है, वही शिव है; जो शिव है, वही गुरु है। दोनों में जो अंतर मानता है, वह गुरुतत्त्व को नहीं जानता और वह दुःख पाता है।

भगवान शिव आगे कहते हैं कि हे प्रिये! वेद-शास्त्र-पुराण, इतिहास, मंत्र-तंत्र-यंत्र, सम्मोहन-वशीकरण-उच्चाटन आदि विद्याएँ एवं शैव, शाक्त, आगम और अन्य सभी मतमतांतर— ये सब बातें बिना गुरुतत्त्व को जाने जीवों को भ्रमित करने वाली हैं। अतः इन सभी चीजों को सद्‌गुरु के बिना नहीं जाना जा सकता है। बिना सद्‌गुरु के जप-तप-व्रत, तीर्थ, यज्ञादि, दान, अनुष्ठान आदि ये सब व्यर्थ हो जाते हैं अर्थात उक्त सभी धार्मिक क्रियाओं का लाभ साधक, उपासक, आराधक को तभी प्राप्त होता है, जब उसे किसी ब्रह्मनिष्ठ गुरु की कृपा, सान्निध्य प्राप्त हो।

वे आगे कहते हैं कि हे पार्वती देवी! आत्मा में सद्‌गुरु के द्वारा दिए गए ज्ञान के सिवा अन्य कुछ भी सत्य नहीं है। इसलिए इस तत्त्व रहस्य को जानने के लिए और आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए बुद्धिमानों को प्रयत्न करना चाहिए। यह संसार गूढ़ अविद्यात्मक माया का रूप है और यह शरीर अज्ञान से उत्पन्न हुआ है। इनका विश्लेषणात्मक ज्ञान जिनकी कृपा से होता है, उस ज्ञान को जगाने वाले को ही सद्‌गुरुदेव कहते हैं। जिन सद्‌गुरुदेव के चरणों की सेवा करने से मनुष्य के सभी पाप मिट जाते हैं और वह विशुद्धात्मा होकर ब्रह्मरूप हो जाता है, उनका वर्णन तुम पर कृपा के लिए मैं करता हूँ।

भगवान शिव वर्णन करते हैं कि हे प्रिये! अज्ञान को जड़-से उखाड़ने वाले, अनेकानेक जन्मों के कर्मों तथा कुकर्मों का निवारण करने वाले, ज्ञान और वैराग्य को सिद्ध करने वाले ऐसे सद्‌गुरुदेव के चरणामृत का पान करना चाहिए। जो अपने दिशा-दर्शक सद्‌गुरु के नाम का कीर्तन या स्मरण करता है, वह अनंतस्वरूप भगवान शिव का ही कीर्तन करता है।

भगवान आगे कहते हैं कि जो दिशादर्शक सद्‌गुरु के नाम का चिंतन करता है, गुरु की सेवा करता है, गुरु की आज्ञा का पालन करता है, वह अनंतस्वरूप भगवान शिव का ही चिंतन, कीर्तन, स्मरण और सेवा करता है। जिस प्रकार से भगवान शंकर का निवासस्थान काशी में है, उसी प्रकार सद्‌गुरुदेव का स्थान भी काशी-क्षेत्र में है। जैसे भगवान विश्वनाथ अपने भक्त को इस संसार के माया-मोह से मुक्त कर देते हैं। उसी तरह सद्‌गुरुदेव भी निश्चित ही साक्षात् तारने वाले ब्रह्म हैं।

वे कहते हैं कि ब्रह्म ही गुरु के रूप में अभिव्यक्त होते हैं और जो गुरु की सेवा करता है, वह साक्षात् ब्रह्म की ही सेवा करता है। जो गुरु का ध्यान करता है, वह ब्रह्म का ही ध्यान करता है। अतः ऐसे शिष्य-साधक, आराधक, उपासक का कल्याण होना सुनिश्चित है। गुरुदेव की सेवा ही तीर्थराज गया के समान है। गुरुदेव का शरीर अक्षय वटवृक्ष है।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

भगवान शिव आगे कहते हैं कि गुरुदेव के श्रीचरण भगवान श्रीहरि-विष्णु के चरण हैं। गुरु के चरणों में लगाया हुआ मन तदाकार हो जाता है। श्री गुरुदेव के मुखारविंद से निकले हुए वचनामृत में ही ब्रह्म स्थित है।

गुरु की कृपा से ब्रह्म को भी प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार से पतिव्रता अपने ही पति का चिंतन करती है, उसी प्रकार सदैव सद्‌गुरुदेव का ध्यान करना चाहिए।

वे आगे कहते हैं कि हे देवी पार्वती! 'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार (अज्ञान) और 'रु' शब्द का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान)। अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करने वाला जो ब्रह्मरूप प्रकाश है, ज्ञान है, वे ही सद्‌गुरुदेव हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। 'गु' कार ही गुणातीत है और 'रु' कार से ही रूप का पता चलता है; क्योंकि 'रु' कार ही रूपातीत है। अस्तु गुण और रूप से परे होने के कारण ही वे 'गुरु' कहलाते हैं।

भगवान आगे व्याख्या करते हैं कि गुरु शब्द का प्रथम अक्षर 'गु' माया आदि गुणों का प्रकाशक है और दूसरा अक्षर 'रु' मायारूपी भ्रम को दूर करने वाले एवं मुक्ति का मार्ग दिखाने वाले परमब्रह्म सद्‌गुरुदेव ही हैं।

गुरुभक्त शिष्य को चाहिए कि वह सद्‌गुरुदेव की प्रसन्नता के लिए अपना तन-मन, प्राण, इंद्रियाँ, धन, मान-सम्मान आदि सब कुछ अपने श्रीगुरुदेव को अर्पित कर दे और स्वयं के साथ-साथ अपने कुटुंबीजनों, नाते-रिश्तेदारों को सद्‌गुरुदेव के बताए मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे, निवेदन करे।

वे कहते हैं कि हे प्रिये पार्वती! जिनके स्मरण मात्र से आत्मा में ज्ञान अपने-आप ही प्रकट होने लगता है, ऐसे सद्‌गुरुदेव ही सभी संपत्तियों के रूप हैं और पूज्य हैं। जब जीवन में मनुष्य के सामने कोई विकट परिस्थिति उपस्थित होती है तब गुरु ही मित्र, सखा और संकटमोचक हैं; क्योंकि वे सभी धर्मों के आत्मस्वरूप हैं। जब संसार में भ्रम व मूढ़ता के कारण मनुष्य को कोई मार्ग दिखाई नहीं देता व मन भ्रम में फँसा होता है, ऐसे समय में सद्‌गुरुदेव ही सन्मार्ग दिखाते हैं।

भगवान शिव कहते हैं कि इस पृथ्वी पर त्रिविध ताप (दैहिक, दैविक व भौतिक) रूपी अग्नि से जलने के कारण अशांत हुए प्राणियों के लिए गुरुदेव ही एकमात्र उत्तम गंगाजी हैं। यदि भगवान शंकर अप्रसन्न हो जाएँ तो सद्‌गुरुदेव बचाने वाले हैं, परंतु यदि सद्‌गुरुदेव रुष्ट हो जाएँ तो बचाने वाला कोई नहीं।

अत: श्रीगुरुदेव को प्रसन्न करके सदैव उनकी शरण में रहना चाहिए। कहा भी गया है कि गुरु त्रिनेत्र न होते हुए भी (दो आँखों वाले) साक्षात् स्वयं शिव ही हैं। दो हाथ वाले होकर भी श्रीहरि विष्णु हैं और चार मुख वाले न होते हुए भी (एक मुख वाले) स्वयं ब्रह्मा ही हैं।

वे आगे कहते हैं कि हे देवी! जीवात्मा अपने कर्मों के कारण जन्म-मृत्यु रूपी चक्रव्यूह में फँसी दु:ख पाती है और जब तक वह मुक्त नहीं हो, तब तक वह दु:ख ही पाती रहेगी। यदि कोई मनुष्य गुरुतत्त्व से मुख मोड़ ले तो याज्ञिक (यज्ञ, अनुष्ठान आदि करने वाला होकर भी) होकर भी मुक्ति नहीं पा सकता।

बिना सद्‌गुरुदेव की कृपा के योगी और तपस्वी भी मुक्त नहीं हो सकते, अस्तु सद्‌गुरुदेव ही एकमात्र आश्रय हैं, जिनकी शरण पाकर मनुष्य मुक्त हो सकता है और ब्रह्म को पा सकता है। अत: श्रीगुरुदेव को प्रसन्न करके सदैव उनकी शरण में रहना चाहिए।

शिष्य को अपने गुरु का नित्य ध्यान, स्मरण करना चाहिए। उनके वचनों को ब्रह्मवाक्य समझ उनका पालन करना चाहिए। इसी में मुक्ति है, आनंद है, शाश्वत सुख है। सचमुच अद्‌भुत है सद्‌गुरुदेव की महिमा। ❑

समदर्शी संत श्री रमण महर्षि

मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट हो जाने पर क्या चेतना समाप्त हो जाती है या कहीं अन्यत्र चली जाती है ? क्या मैं मर जाऊँगा ? क्या यह शरीर ही 'मैं' हूँ या कुछ और है ? शाश्वत सत्य क्या है ? मेरा सत्य स्वरूप क्या है ? अपने सत्य स्वरूप का दिग्दर्शन कैसे करूँ ? आदि प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए एक सत्रहवर्षीय युवा अरुणाचल की ओर चल पड़ा।

आगे चलकर यही युवा महर्षि रमण के नाम से जगद्‌विख्यात हुआ। सत्रह वर्ष की आयु में वे घर छोड़कर अरुणाचल की ओर चल पड़े। उन्हें लगा कि उन्हें अरुणाचल बुला रहा है। वहीं उनकी सारी जिज्ञासा शांत हो सकती है। अरुणाचल पहुँच कर वे अपनी गहन साधना में लीन हो गए। उन्होंने अपनी समस्त चित्तवृत्तियों को समेटकर एकाग्र कर लिया और ध्यानमग्न हो गए।

मंदिर का वह गर्भगृह जहाँ वे ध्यानमग्न थे, वर्षों से बंद था और वहाँ जहरीले कीड़े-मकोड़ों का साम्राज्य था और अँधेरा भी था, पर ध्यान में मग्न रमण महर्षि इससे जरा भी विचलित हुए बिना ध्यान में डूबे रहे।

उनका सारा शरीर काला पड़ गया, केश बढ़कर जटा का रूप धारण कर गए, नाखून बड़े-बड़े हो गए, पर उनका ध्यान गहराता गया और अंततः उन्हें अपने सत्यस्वरूप, आत्मस्वरूप की अनुभूति हुई। उन्होंने इस सत्यस्वरूप को केवल देखा ही नहीं, बल्कि उसे पा भी लिया। सभी प्राणियों में उन्हें आत्मतत्त्व के दर्शन होने लगे।

आश्रम में रहने वाले बंदर, गिलहरी, मोर, साँप, गाय और कुत्ते आदि सबमें उन्हें उसी आत्मतत्त्व के दर्शन होते और वे उन सबसे प्रेम करते, स्नेह करते और वे सभी जानवर भी निर्भीक होकर उनके पास रहते, उनसे प्रेम करते।

महर्षि प्रायः मौन रहते और मौन रहते हुए भी बिना बोले ही अपनी आत्मा की स्फुरणा से अपने पास आने वाले साधकों, जिज्ञासुओं, दर्शनार्थियों की शंकाओं व दुःखों का निवारण करते। शरीर भाव से वे बिलकुल शून्य थे और चिदानंद आत्मा के वे जीवित, जाग्रत स्वरूप थे। जब वे साधना करने बैठते तो कोई छिपकली उनके ऊपर आ कूदती और भाग जाती। मच्छर अपना राग अलापने लगते, कभी बिच्छू डंक मार देते, पर वे निर्विकार भाव से सब कुछ देखते-सहते रहते।

कुछ दिनों के बाद तो इन सभी प्राणियों ने उन्हें अपना परिवार ही मान लिया। मनुष्य के प्रति जो इन प्राणियों की धारणा थी, वह रमण महर्षि के व्यवहार को देखकर समाप्त हो गई। वे प्राणी मनुष्य को प्रेमहीन प्राणी मानते थे, जो सदा इनकी हत्या करता था और अन्य प्रकार से इन्हें परेशान किया करता था, लेकिन इन प्राणियों ने रमण महर्षि में ऐसा कुछ भी नहीं पाया तो उनकी परायेपन की दीवार टूट गई।

एक बार एक विषधर सर्प महर्षि के स्कंदाश्रम में आया और उनके चरणों में लेट गया। इसके बाद वह प्रायः आया करता व उनके चरणस्पर्श करता। एक मादा कौआ तो अपने बच्चों का

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

भार ही महर्षि पर छोड़ देती थी। वह दिन को भोजन की तलाश में जाती तो बच्चे उनके पास छोड़ जाती।

वे उनकी देख-भाल करते और जब उन्हें भूख लगती तो वे चिंचियाते, तब महर्षि उन्हें भोजन देते और पानी पिलाते। महर्षि के आश्रम के पास रहने वाले कई प्राणी अपने परंपरागत वैमनस्य को भुलाकर परस्पर मित्र बन गए। वहाँ एक साँप आश्रम के एक मोर का मित्र बन गया और जब मोर पंख फैलाकर नाचता तो साँप भी अपना फन फैला कर लहराने लगता।

आश्रम के पशु-पक्षी महर्षि के बंधु-बांधव बन चुके थे। वे उन्हें प्रायः प्रेम से सहलाते, उनसे बात करते और प्रतिदान में वे उनसे भी स्नेह पाते थे। महर्षि रमण एक बार शिलाखंड पर बैठे थे। वहाँ एक सर्प रेंगता हुआ आया और उनके पैर पर चढ़कर चला गया। शिष्यों ने पूछा—"सर्प ने काटा क्यों नहीं?" महर्षि ने उत्तर दिया—"क्या सर्प भूमि पर फन से प्रहार करता है?"

कहने का अर्थ था कि सर्प के लिए भूमि कोई अवरोध, वैषम्य या अहंकार पैदा नहीं करती। सर्प के काटने का कारण जीव का अहंकार, उससे उत्पन्न विषमता, हिंसा की भावना व वृत्ति, भेद और उससे उत्पन्न अवरोध है।

महर्षि प्रायः मौन रहते थे। मौन भाषा में ही वे आगंतुकों की जिज्ञासाओं का उत्तर देते थे। उनकी दृष्टि नीची रहती थी, पर कभी किसी को आँख-से-आँख मिलाकर देखा तो इसका अर्थ होता था कि उसकी दीक्षा हो गई। उसे ज्ञान मिल गया।

उनके सत्संग के समय उनका मौन प्रवचन सुनने कितने ही प्राणी नियत स्थान और नियत समय पर वहाँ आ पहुँचते थे। बंदर, तोते, साँप, कौए सभी को ऐसा अभ्यास हो गया था कि वहाँ आगंतुकों की भीड़ से बिना डरे, झिझके वे अपने नियत स्थान पर आ बैठते थे और मौन सत्संग समाप्त होते ही अपने-अपने घोंसलों और स्थानों पर लौट जाया करते थे।

सचमुच अपने आत्मस्वरूप में स्थित बड़े समदर्शी संत थे श्री रमण महर्षि। ❑

मरकट वानरों का सरदार था। एक दिन उसके बच्चे ने उससे पूछा—"पिताजी! पेड़ों पर लगी पत्तियों में खाने के लिए श्रेष्ठ पत्तियाँ हमेशा ऊँची डालियों पर क्यों होती हैं?" मरकट बोला—"यदि वे ऊँचाई पर न लगें, तो कोई भी उन्हें कभी भी तोड़कर खा लेगा। फिर तो वे बची रह ही न पाएँगी।"

बच्चे ने फिर पूछा—"फिर सभी वानर ऊँची डालियों से पत्तियाँ क्यों नहीं लेते?" मरकट बोला—"ऊपर की डालियाँ पतली हैं। सब चढ़ेंगे तो सब गिरेंगे और यही भय उन्हें ऊपर नहीं जाने देता।" बच्चा फिर बोला—"तो खतरा उठाकर ऊपर चढ़ना क्या सही रहेगा?" मरकट बोला—"पुत्र! जीवन में जो जितनी चुनौतियों को स्वीकार करते हैं, वे उतना ही ऊँचा बढ़ पाते हैं। समझौता करने वाले लोगों को जितना मिलता है, उतना स्वीकार कर अपना काम चलाना पड़ता है।"

आस्तिकता का वास्तविक अर्थ

ईश्वर को स्वीकार कर लेना ही आस्तिकता नहीं है। यह तो केवल एक आरंभिक कदम है। सच्ची आस्तिकता का अर्थ है—अपने जीवन में ईश्वरीय मूल्यों को उतारना और उनका पालन करना। सत्य, प्रेम, न्याय, सेवा, करुणा, शांति, सहिष्णुता और आत्मनियंत्रण जैसे गुणों को जीवन में अपनाना ही आस्तिकता का मूल स्वरूप है। जो व्यक्ति इन आदर्शों के अनुरूप जीवन जीता है, वही सच्चा आस्तिक कहलाता है।

आज समाज में अनेक लोग धार्मिक माने जाते हैं, परंतु उनके आचरण में नैतिकता और आदर्शों का अभाव होता है। वे पूजा-पाठ तो करते हैं, पर जीवन में ईमानदारी, करुणा और कर्त्तव्यनिष्ठा का अभाव होता है। इस प्रकार की आस्तिकता केवल बाह्य दिखावा बनकर रह जाती है। सच्ची आस्तिकता का अर्थ है—मन, वाणी और कर्म से ईश्वर के प्रति श्रद्धा और जीवन में उच्च आदर्शों की स्थापना करना।

इसमें आचरण की पवित्रता, विचारों की शुद्धता और समाज के प्रति उत्तरदायित्व का समावेश होता है। ईश्वर की सत्ता को मानने वाला व्यक्ति यदि अपने जीवन में उसकी मर्यादाओं का पालन नहीं करता तो उसकी आस्तिकता अधूरी और खोखली होती है। असली आस्तिक वह है, जो कठिनाइयों और प्रलोभनों के बीच भी नैतिकता का साथ न छोड़े और सेवा, सहानुभूति एवं परोपकार के मार्ग पर डटा रहे। आज के समय में आवश्यकता है कि हम आस्तिकता को केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित न रखें, बल्कि उसे अपने संपूर्ण जीवन का आधार बनाएँ।

सच्ची आस्तिकता वही है, जो मानवता के हित में कार्य करे, समाज को जोड़ने वाली हो और जीवन को श्रेष्ठता की ओर ले जाए। जब आस्तिकता का स्तर केवल पूजा-पाठ और बाह्य कर्मकांडों तक सीमित रह जाता है तो उसका कोई ठोस प्रभाव जीवन या समाज पर नहीं पड़ता, लेकिन जब आस्तिकता का आधार विवेक, नैतिकता और परमार्थ बनता है, तब वह मानव जीवन को नई दिशा देती है।

धार्मिक स्थलों, जैसे मंदिरों में उपासना का उद्देश्य केवल श्रद्धा व्यक्त करना नहीं होना चाहिए, बल्कि उन्हें ऐसा केंद्र बनना चाहिए, जहाँ से आत्मशक्ति और प्रेरणा का संचार हो। सच्ची आस्तिकता व्यक्ति को आत्मिक और सामाजिक विकास के मार्ग पर ले जाती है। इसे केवल ईश्वर में विश्वास तक सीमित न रखा जाए, बल्कि जीवन में उन सिद्धांतों को लागू करना भी आवश्यक है, जो ईश्वर की सत्ता के अनुरूप हों।

साधना केवल मनन या मंत्र-जाप नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर कर्म में ईश्वर की चेतना को अनुभव करने का अभ्यास है। जब आस्तिकता जीवन की हर गतिविधि में झलकती है—जैसे घर में शांति, कार्यस्थल पर ईमानदारी, समाज में सेवा और देश के लिए उत्तरदायित्व—तब वह सार्थक होती है। आज के समय में धर्म को अक्सर अंधविश्वास और कर्मकांडों से जोड़कर देखा जाता है; जबकि इसका वास्तविक स्वरूप जीवन की

गुणवत्ता सुधारने वाला होना चाहिए। सच्चा धर्म वह है, जो मनुष्य को भीतर से शुद्ध और बाहर से सक्रिय बनाए।

सामाजिक क्षेत्र में आस्तिकता की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह समाज के लिए नैतिक मानदंड, सहयोग की भावना और दूसरों के प्रति करुणा विकसित करती है। यदि आस्तिकता केवल व्यक्ति की मुक्ति तक सीमित रह जाए तो यह अधूरी है। उसे समाज को जोड़ने और सशक्त बनाने की प्रक्रिया में भी भाग लेना चाहिए।

ईश्वर का अनुभव केवल एकांत साधना से नहीं, बल्कि समाज में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के माध्यम से भी होता है। जब व्यक्ति दूसरों के दुःख में भागीदार बनता है और उनके जीवन को बेहतर बनाने के लिए प्रयास करता है, तभी वह सच्चा आस्तिक कहलाता है।

आज की दुनिया में, जहाँ भौतिकता और स्वार्थ की प्रधानता है, वहाँ सच्ची आस्तिकता की अत्यधिक आवश्यकता है, जो मनुष्य को भीतर से दृढ़, सहृदय और कर्त्तव्यनिष्ठ बनाए। यदि किसी राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता और धर्म में आस्तिकता का सच्चा स्वरूप नहीं होता, तो वहाँ केवल कर्मकांडों का बोलबाला रह जाता है।

इसलिए पूजा-पाठ और धार्मिक अनुष्ठानों के साथ-साथ उनके पीछे छिपे नैतिक और सामाजिक आदर्शों को समझना और जीवन में उतारना जरूरी है। मंदिर या अन्य उपासनास्थल केवल श्रद्धा प्रदर्शन के केंद्र नहीं होने चाहिए। वहाँ का वातावरण इतना प्रेरणादायक हो कि मनुष्य के भीतर सद्भाव, समर्पण और सेवा की भावना जागे।

हर धार्मिक कर्मकांड का उद्देश्य अंत:करण की शुद्धि और समाज के प्रति कर्त्तव्यबोध होना चाहिए। प्रार्थना, भजन या संकीर्तन तभी प्रभावशाली होते हैं, जब वे हृदय की गहराइयों से निकलें और व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाने का माध्यम बनें। यदि इनका मकसद केवल रटने, दिखाने या भीड़ जुटाने तक सीमित है तो ये केवल औपचारिकता बनकर रह जाते हैं।

एक सच्चे आस्तिक को हर दिन अपने व्यवहार में सत्य, करुणा, संयम और उदारता का प्रदर्शन करना चाहिए। यह आस्तिकता का व्यावहारिक रूप है, जो पूजा की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली होता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—व्यवसाय, परिवार, राजनीति, शिक्षा, सेवा में यह भाव परिलक्षित होना चाहिए। इस समय देश और समाज को ऐसे आस्तिकों की आवश्यकता है, जो केवल धर्म के नाम पर परंपराओं को ढोते न रहें, बल्कि अपने आचरण से दूसरों को दिशा दें। ऐसे लोग जो निष्कलंक चरित्र, सेवा, निष्ठा और सहयोग के प्रतीक बन सकें। सच्ची आस्तिकता का मर्म यही है। ईश्वर की सत्ता को केवल मान लेना ही नहीं, बल्कि अपने विचार, व्यवहार और संबंधों में उसकी उपस्थिति को जीवंत करना।

यही वह आधार है, जिस पर एक आदर्श समाज और शक्तिशाली राष्ट्र की नींव रखी जा सकती है। समाजसेवा, परमार्थ, परिपक्वता और लोक-मंगल के लिए समय, श्रम और साधनों का समर्पण करना ही आस्तिकता की सच्ची कसौटी है। यह केवल भावनाओं या विश्वास की बात नहीं, बल्कि आत्मविकास की एक ठोस प्रक्रिया है, जिसमें निरंतर अभ्यास और अनुशासन की आवश्यकता होती है।

आस्तिकता का वास्तविक स्वरूप व्यक्ति के भीतर की स्वच्छता और सेवा भावना से प्रकट होता है। यदि किसी का मन निर्मल न हो, विचार

शुद्ध न हों और व्यवहार में करुणा न हो तो उसकी आस्तिकता सतही और अधूरी रह जाती है। केवल मंदिर जाना, पूजा करना या धार्मिक पहचान रखना पर्याप्त नहीं है, जब तक कि उसमें जीवन की श्रेष्ठता और समाज के कल्याण की भावना न हो।

वास्तविक आस्तिक वह है—जो अपने विचारों, व्यवहार, कार्यों और संबंधों में सत्य, अहिंसा, करुणा, क्षमा, सहिष्णुता और दया जैसे गुणों को स्थापित करता है। वह व्यक्ति दूसरों की सेवा को ईश्वर की सेवा मानता है और अपने जीवन को एक मिशन के रूप में देखता है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम धर्म और आस्था के नाम पर बाहरी परंपराओं में उलझने के बजाय उनके भीतर के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को समझें और आत्मसात् करें।

हमें अपने जीवन को श्रेष्ठ, शांतिपूर्ण और समाजोपयोगी बनाने की दिशा में आस्थावान बनना है। सच्ची आस्तिकता व्यक्ति को कर्त्तव्यनिष्ठ, जागरूक और समाज के प्रति उत्तरदायी बनाती है। यह केवल किसी एक धर्म या परंपरा तक सीमित नहीं होती। सभी महान आध्यात्मिक परंपराओं का मूल भाव यही रहा है।

यदि कोई व्यक्ति जीवन में सत्य को अपनाता है, विवेक से निर्णय लेता है और दूसरों के लिए सहायक बनता है तो चाहे वह किसी भी धर्म को माने, वह सच्चा आस्तिक है।

आज जब समाज अनेक तनावों और विघटन की स्थितियों से गुजर रहा है, तब आस्तिकता का वास्तविक रूप ही समाधान बन सकता है। ऐसी आस्तिकता जो केवल मान्यता नहीं, बल्कि जीवन की दिशा बन जाए। ❑

एक संत से एक व्यक्ति ने पूछा कि महाराज! सदा सुखी रहने का क्या उपाय है?

संत ने उत्तर देने के स्थान पर उसे एक छोटा-सा कंकड़ दिया और उसे मुट्ठी में बंद करके अपने सिर के ऊपर उठाने को कहा। उस व्यक्ति ने संत के निर्देश का पालन किया। कंकड़ का वजन ज्यादा नहीं था तो थोड़ी देर तो उस व्यक्ति को कोई कष्ट नहीं हुआ, पर ज्यादा देर तक हाथ ऊपर रखे रहने पर, उसका हाथ दुखने लगा तो संत ने उससे अपना हाथ नीचे कर लेने को कहा।

संत उसे समझाते हुए बोले—"वत्स! सदा सुखी रहने का यही मंत्र है। जीवन में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। पर जो जीवन में समस्याएँ हैं, वे चाहे इस कंकड़ की तरह छोटी ही क्यों न हों, उन्हें देर तक पकड़े रहने पर वो स्थायी दुःख का कारण बन जाती हैं। इसलिए समस्याओं को छोड़ देने वाले ही सुखी रहते हैं।"

पर्व विशेष-संत रविदास जयंती

दिव्य संत-संत रविदास जी

भारतीय इतिहास की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना को जनसमाज में जीवंत और जाग्रत बनाए रखने में मध्यकालीन संत महापुरुषों का अप्रतिम योगदान है। ज्ञान, भक्ति, तपश्चर्या और सत्संग का अवलंबन लेकर समाज में निरंतर सत्प्रेरणाएँ व कल्याणकारी विचारों को प्रसारित करने वाले दिव्य भक्त संतों में संत रविदास का नाम अग्रिम पंक्ति में आता है। उनका परिचय संत शिरोमणि रामानंद जी के प्रिय शिष्य, कबीर के मित्र और मीराबाई के मार्गदर्शक के रूप में सर्वविदित है।

निर्गुण भक्तिधारा के प्रवाह को अपनी आत्म ज्योति से प्रकाशित कर उन्होंने अध्यात्म की अद्वैत परंपरा को परिपुष्ट किया है। उनकी अंत:संवेदना मौजूदा समाज के संतापों से उद्वेलित होकर सभी को एकता, समता और मानवता का उपदेश प्रदान करती है। भारतवर्ष में धर्म, संस्कृति और समाज तीनों समान रूप से संत रविदास के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रेरित-प्रकाशित हुए हैं।

प्रत्येक वर्ष माघ पूर्णिमा की तिथि पर संत रविदास की जयंती मनाई जाती है। इस वर्ष एक फरवरी को यह तिथि आ रही है। पवित्र नदियों में स्नान, भजन, कीर्तन, नगर शोभायात्रा, लंगर, गुरुद्वारों-मंदिरों में प्रार्थना, गुरु ग्रंथ साहिब के पाठ जैसी अनेक गतिविधियाँ एवं आयोजन करने के साथ देश-विदेश में गुरु रविदास की जयंती मनाए जाने की परंपरा है।

इस वर्ष भी इन परंपराओं को आधार बना कर अत्यंत धूम-धाम और उत्साह से यह पर्व मनाया जाएगा, परंतु इन आयोजनों के पीछे का उद्देश्य एवं संदेश अत्यंत दिव्य, पावन प्रेरणादायी एवं प्रासंगिक है।

संत कबीर और गुरु नानक की भाँति गुरु रविदास ने भी निर्गुण भक्ति के मार्ग पर चलकर विश्व मानवता को प्रेम, करुणा और एकता का संदेश दिया है।

जातिवाद, छुआछूत, लैंगिक असमानता जैसी अनेक कुरीतियों के विरुद्ध समाज में समानता, एकता, भाईचारा, प्रेम, सौहार्द और आत्मसम्मान की अमूल्य सीख वर्तमान में भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी उनके काल में थी।

संत रविदास की इन महान शिक्षाओं का प्रभाव ही था कि सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन देव ने उनकी चालीस से अधिक काव्य रचनाओं को पवित्र ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' में सम्मिलित किया।

मानवीय उत्थान और कल्याण की भावना से उन्होंने आदर्श समाज की परिकल्पना की तथा बेगमपुरा नाम से दु:खरहित शहर की अवधारणा प्रस्तुत की

बेगमपुरा सहर को नावो,
दु:ख-अंधोह नहीं ताहि थाओ।

अर्थात बेगमपुरा ऐसे शहर का नाम है, जहाँ कोई दु:ख या दु:खी नहीं है। यह केवल समानता और आनंद की भूमि है।

समाज कल्याण की भावना और मान्यता तो सभी भक्त संतों में रही है परंतु संत रविदास की भावना ने व्यावहारिक रूप लेकर समाज को प्रेरित और जाग्रत करने का सफल प्रयास किया है।

वे स्वयं हिमालय के तीर्थस्थलों से लेकर महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, आंध्रप्रदेश आदि अनेक स्थलों-प्रांतों में भक्ति-भाव का संचार करते हुए पहुँचे और समाज-कल्याण को चरितार्थ करने वाले अपने मानवतावादी विचारों को प्रसारित किया।

उनकी विचारधारा एवं उपदेशों का स्रोत कोई शास्त्र या धर्म-परंपरा आदि नहीं रहे, अपितु स्वयं की भक्ति-साधना और संतों, साधुओं, सत्पुरुषों का सान्निध्य और आत्म अनुभूतियाँ रहे हैं। गुरु रविदास को रैदास नाम से भी पुकारा जाता है।

उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व, भक्तिभाव और मानवीय संवेदना में प्रेम और करुणा की आभा के कारण ही तत्कालीन समाज में उनकी प्रतिष्ठा उच्चकोटि के संत-महापुरुषों में की गई; जबकि सामाजिक दृष्टि से इतर जाति में उनका जन्म हुआ था और उस समय भेदभाव व छुआछूत जैसी मान्यताएँ सर्वत्र समाज में व्याप्त थीं।

जूते-चप्पल बनाने का काम करने पर भी उनमें हीन-भावना का जरा भी अंश नहीं था। प्रत्येक कार्य को अपनी भक्ति-भावना से ईश्वरप्रेम में परिवर्तित कर उन्होंने सहज कर्त्तव्य मार्ग पर चलकर ही अध्यात्म की उच्चस्तरीय सिद्धियाँ प्राप्त कर ली थीं।

उनके जीवन चरित्र में ऐसी अनेक चमत्कारी घटनाओं-सिद्धियों की पुष्टि होती है। **'मन चंगा तो कठौती में गंगा'**—संत रविदास की प्रसिद्ध उक्ति है, जिसका भावार्थ है कि भीतर की शुद्धता, पवित्रता है तो मनुष्य को कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं है।

कहा जाता है कि पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में, जब संत रविदास का जन्म हुआ, उस काल में धार्मिक संप्रदायों के बाह्य आडंबरों, अंधविश्वासों, कर्मकांड, मिथ्याचार, जात-पाँत, ऊँच-नीच जैसी रूढ़ियों-कुप्रथाओं ने समाज की स्थिति को अत्यंत दयनीय एवं शोचनीय बना दिया था।

ऐसे में भक्त हृदय विचलित हुए बिना कैसे रह सकता है ? उस काल के सभी संतों-भक्तों के स्वर इस दिशा में मुखर हुए, जिनमें कबीर का तीखापन और संत रविदास की विनम्रता इन्हें सभी से अलग स्थान प्रदान करते हैं। उनकी वाणी में विद्यमान भक्तिभाव का अमृत और पीड़ित समाज के प्रति करुणा के स्वर उन्हें भारत के अद्वितीय संत शिरोमणि की श्रेणी में खड़ा कर देते हैं।

संत रविदास की वाणी एवं उपदेश मानवता के लिए शाश्वत मंत्र की भाँति हैं। उनकी दिव्य विचारणा को किसी देश-काल की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है। जैसे उनके विचार हैं कि प्रत्येक ईश्वरभक्त महान है और प्रत्येक मनुष्य समान है। इस प्रकार उनके प्रत्येक शब्द में जीवन की अनंत प्रेरणाएँ व प्रकाश मौजूद है।

अनेक विद्वानों ने उन्हें संत, कवि, भक्त होने के साथ-साथ सच्चा मानवतावादी और समाज सुधारक संत भी कहा है, परंतु इनका समाज सुधार इतिहास के पन्नों तक सीमित नहीं कहा जा सकता। यह तो सदैव, सर्वदा के लिए प्रतिष्ठित है। समाज उत्थान की दृष्टि से आज भी और पूर्व कालों में भी संत रविदास सदैव प्रासंगिक रहे हैं।

संत रविदास का जीवन भक्तिकाल की जिस संत-परंपरा का नेतृत्व करता है, उस काल के संतों-भक्तों में से प्राय: सभी ने अपनी एक अलग प्रणाली को विकसित किया है। इनकी प्रणालियों में हिंदू-मुसलिम की किसी संरचना का समर्थन या विरोध नहीं था, अपितु ये अपनी मौलिकता के साथ धर्म, समाज और संस्कृति को मानवता से पुष्ट करने वाली हैं।

संत रविदास की प्रणाली भी ऐसी ही रही, जिसे आगे चलकर रविदासिया विचारधारा या मत के रूप में पहचाना जाता है। कबीरपंथी हों या रविदासिया—इनका मूल उद्देश्य संत वाणी एवं उपदेशों का प्रचार-प्रसार कर समाज में जाग्रति लाना एवं उनकी दिव्य प्रेरणाओं को पहुँचाना रहा है। रविदासिया मत के मानने वाले भारत ही नहीं, अपितु विश्व के अनेक देशों में मौजूद हैं और संत रविदास की कल्याणमयी वाणी को प्रसारित कर रहे हैं। इस मत ने दो सौ चालीस भजनों का संकलन कर ग्रंथ के रूप में संत रविदास की रचनाओं व विचारों को व्यापक बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इन भजनों का गायन, कीर्तन और गुरु ग्रंथ साहिब की कविताओं का पाठ संत रविदास जयंती को भक्ति, श्रद्धा और समर्पण से भर देते हैं। इस दिन संत रविदास से संबंधित सभी स्थलों, मंदिरों, गुरुद्वारों पर उनके दिव्य व्यक्तित्व की आभा सभी को सहज ही प्रेम, उत्साह, साहस और समर्पण से भर देती है। ❑

तुंगभद्रा नदी के किनारे एक नगर में आत्मदेव नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी अत्यंत दुष्ट एवं कर्कश स्वभाव की थी, नाम था उसका—धुंधुली। आत्मदेव संपन्न था, परंतु उसके कोई पुत्र न था। एक दिन इसी दुःख से दुःखी होकर वह आत्महत्या करने नदी के तट पर पहुँचा। दैवी संयोग से एक सिद्ध संत वहाँ से गुजर रहे थे, वे आत्मदेव की मनोव्यथा ताड़ गए। सिद्धपुरुषों को भविष्य का ज्ञान होता है, वे आत्मदेव से बोले—''तेरे भाग्य में पुत्र-सुख नहीं है, नाहक चिंता मत कर। पुत्र हुआ तो मात्र दुःख का कारण बनेगा।'' परंतु आत्मदेव न माना, उसने सिद्धपुरुष को सामने देख उनके चरण पकड़ लिए और उनसे आशीर्वाद की याचना करने लगा।

संत उसका अनुरोध ठुकरा न सके, सो उन्होंने उसे एक फल दिया और बोले—''इसे ले जाकर अपनी पत्नी को खिला देना, पुत्र की प्राप्ति होगी।'' आत्मदेव ने खुशी-खुशी घर लौटकर वह फल पत्नी को दिया। पत्नी स्वभाव से ही कपटी थी। उसने वह फल गाय के चारे में डाल दिया और अपने लिए, अपनी बहन का पुत्र लेकर आ गई व उसे अपने पति को दिखा दिया। पुत्र का नाम रखा—धुंधुकारी, जो आगे चलकर अत्यंत ही पापी, दुष्ट प्रवृत्ति का हुआ। उधर गाय के गर्भ से मनुष्यरूपी पुत्र का जन्म हुआ, जिसके कान गाय के समान थे। इसलिए वह गोकर्ण कहलाया।

आत्मदेव को अब अपनी पत्नी का किया समझ में आया, परंतु अब तक बहुत देर हो चुकी थी। धुंधुकारी अपनी पतित प्रवृत्ति के कारण परिवार का नाम डुबाता रहा; जबकि गोकर्ण की प्रसिद्धि एक दिव्य संत के रूप में हो गई।

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

नवयुग के संविधान के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अठारहसूत्रीय युग निर्माण सत्संकल्प की अवधारणा प्रस्तुत की है। सभी गायत्री परिजन इसके महत्त्व से परिचित हैं और जानते हैं कि व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व-निर्माण के लिए गुरुप्रणीत इस सत्संकल्प का प्रत्येक सूत्र-सोपान महामंत्र की भाँति है।

'गागर में सागर' की भाँति विश्व मानवता के समस्त पहलुओं के उत्कर्ष एवं कल्याण का युगानुरूप सर्वोत्तम मार्ग इन सूत्रों में समाहित है। प्रत्येक सूत्र में मानवीय जीवन के अंत: अथवा बाह्य—एक विशिष्ट पहलू के संवर्द्धन, शोधन एवं विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

मौजूदा समस्त समस्याओं-संकटों का समुचित समाधान एवं सुखद उज्ज्वल भविष्य की सुनिश्चित प्राप्ति का अद्‌भुत विधान इसमें सन्निहित है। सत्संकल्प के मर्म एवं महत्त्व को हमारे सभी परिजन भली भाँति जानते-समझते-अपनाते हुए ही लोक-सेवा, लोक-मंगल के कार्यों में निरत रहते हैं। उल्लेखनीय है कि सत्संकल्प के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए विगत वर्षों से एक अभियान के रूप में अनेकों महत्त्वपूर्ण कार्य किए जा रहे हैं।

छोटे-बड़े अवसरों, आयोजनों, उत्सवों से लेकर व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर के सभी कार्यक्रमों में सत्संकल्प के पठन-पाठन-वाचन का क्रम अपनाया जा रहा है। ऐसे सब सत्प्रयासों का परिणाम भी अत्यंत सराहनीय और गौरवान्वित करने वाला है। वर्तमान में गतिशील सत्संकल्प के इस व्यापक अभियान के साथ ही इसमें एक विशेष पक्ष और जुड़ जाता है।

यह पक्ष है—सत्संकल्प को जीवन के व्यावहारिक अभ्यास में, आचरण में उतारने का। दैनिक जीवन में एक-एक सूत्रों का अभ्यास कैसे किया जा सकता है और इसकी महत्ता क्या है? इस बात को बताए-समझाए बिना, बात केवल पठन-पाठन-वाचन मात्र से नहीं बनने वाली है। सत्संकल्प की सार्थकता, इसके महामंत्ररूपी जीवन सूत्रों को अभ्यास में लाने-चरितार्थ करने में है।

इसका व्यावहारिक पक्ष अत्यंत सरल-सहज और प्रेरक है। मूल्यनिष्ठ जीवन जीने की सर्वोत्तम रीति-नीति, उच्चतम जीवन-दृष्टि और जीवन आदर्श तथा व्यक्ति एवं समाज के परम कल्याणकारी मार्ग का समुचित मार्गदर्शन इसमें मौजूद है। विश्व मानवता ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व-वसुंधरा के सुख-शांति और स्वर्णिम भविष्य का ऐसा सर्वांगपूर्ण मॉडल अन्यत्र कहीं खोजे नहीं मिलेगा।

हम सब परम सौभाग्यशाली हैं कि अपनी गुरुसत्ता से विरासत एवं उत्तरदायित्व के रूप में मिला यह सत्संकल्प सभी गायत्री परिजनों की जीवन-साधना व पुरुषार्थ का अभिन्न अंग है। इक्कीसवीं सदी में संपूर्ण विश्व मानवता के उज्ज्वल भविष्य का यह अद्वितीय अठारहसूत्रीय जीवन दर्शन धराधाम में सर्वत्र परम कल्याण के लिए ही प्रस्तुत हुआ है।

स्वयं युगऋषि इसके रचयिता हैं और इस पर चलने वालों के लिए गुरुसत्ता के रूप में संरक्षक व शक्ति का स्रोत भी हैं। जन-जन तक, धरती के हर

कोने तक इसे पहुँचाने का कार्य हम परिजनों के हिस्से है। घनीभूत विषमताओं से भरे आसन्न संकटों के बीच खड़ी-कराहती भयभीत मानवता के इस काल में पूज्य गुरुदेव द्वारा सृजित इस नवसृजन के संविधान की आवश्यकता सर्वाधिक है।

नवयुग के शिल्पकारों-लोकसेवियों के प्रति यही निवेदन है कि सत्संकल्प की परिधि-अनुशासन में स्वयं आ जाने मात्र से काम नहीं चलने वाला है, वरन जनमानस के बीच छूटे हुए अन्य सभी को भी इससे जोड़ने और सम्मिलित करने का प्रारंभ करने की तत्परता भी बरतनी है। इस दिशा में पहले से चल रहे सत्प्रयासों को भी और अधिक तीव्र एवं व्यापक बनाने का यही समय है।

इसके एक-एक सूत्र की चर्चा, चिंतन एवं प्रेरणाएँ अखण्ड ज्योति के पृष्ठों में प्रसारित होते रहेंगे। इस अभियान के पथ को सदैव प्रकाशित बनाए रखने की प्रतिबद्धता को आत्मसात् करते हुए सत्संकल्प के अठारह दिव्य महामंत्रों की प्रेरणाओं को क्रमिक रूप से यहाँ प्रस्तुत करने का क्रम अपनाया जा रहा है।

हम सभी के समक्ष 'नवयुग के संविधान' के रूप में प्रतिष्ठित हमारे युगनिर्माण सत्संकल्प के अठारह सूत्रों में प्रथम सूत्र है—'**हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।**' अर्थात ईश्वर में विश्वास, ईश्वरीय न्याय की स्वीकारोक्ति एवं ईश्वरीय अनुशासन के अनुरूप जीवन की रीति-नीति का निर्धारण—यही तीन चरण इस प्रथम सूत्र की प्रेरक मंत्रणा में सन्निहित हैं।

इन तीनों से मनुष्य जीवन के तीन महान आदर्श प्रस्तुत होते हैं। आस्तिकता का वरण, सत्कर्मों में प्रवृत्ति और जीवन की अंतः-बाह्य प्रकृति का शोधन-संवर्द्धन। यही मर्म है, इस प्रथम सूत्र का। ईश्वर की सत्ता मानव जीवन के लिए उच्चस्तरीय आध्यात्मिक चेतना का सर्वोच्च आदर्श है। यही ईश्वरीय चेतना सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है।

संपूर्ण संसार में जीवन की पोषक एवं ऊर्जाशक्ति का केंद्र यही सर्वव्यापी चेतना है। मनुष्य भी उसी का एक अंश है। मानवीय मानस में असंख्य रूप-स्वरूप विद्यमान हैं। '**जाकी रही भावना जैसी**' के भाव में ईश्वरत्वरूपी सर्वव्यापी चेतना का नानाविध नामरूपों में संबोधन किया जाता है। उस परम चेतना का प्रकाश ही जीवन एवं जगत् में सत्प्रवृत्तियों, सत्कर्मों, सद्‌गुणों के रूप में प्रतिबिंबित होता है। ईश्वरीय विभूतियों के रूप में सदैव मानव मात्र को सच्चिंतन-सत्कर्मों की दिशा में प्रेरित करने वाली एकमात्र सत्ता ईश्वरीय चेतना ही है।

परमपूज्य गुरुदेव ने स्वयं भी यही उपदेश दिया है कि ईश्वर जब जीवन में प्रकट होता है तो वह सद्‌गुणों के समुच्चय के रूप में ही होता है। ईश्वर का परम आध्यात्मिक व यथार्थ स्वरूप संसार में प्रेम, सौंदर्य, सहृदयता, उदारता, परोपकार, दया, करुणा, सेवा, सहयोग, संयम, धैर्य, शांति, आनंद जैसे अगणित सद्‌गुणों का रूप लेकर ही अभिव्यक्त होता है। ऐसे सद्‌गुणों को जीवन में धारण कर सकने की क्षमता का अभ्यास ही सर्वत्र धार्मिक क्रियाकलापों के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

ईश्वर और उसकी सर्वव्यापी सत्ता के प्रति अटूट आस्था और विश्वास से मनुष्य जीवन को एक सर्वोत्तम उपहार प्राप्त होता है, जिसका नाम है—आस्तिकता। आस्तिकता का सीधा संबंध परमचेतना के अंश रूप में स्वयं की सत्ता-अस्तित्व पर अटूट विश्वास है। आस्तिकता के मार्ग से ही स्वयं का परिचय मिलता है।

स्वामी विवेकानंद ने भी स्वयं पर विश्वास को ही आस्तिकता बताया है। वस्तुतः आस्तिकता

की गोद में ही अंतर्निहित आत्मचेतना की भूमि पर परमचेतना के प्रति भक्ति, समर्पण और विश्वास का संबंध विकसित होता है।

आत्मचेतना और परमचेतना के संबंध की प्रगाढ़ता में सुख, शांति, संतुष्टि, प्रसन्नता जैसे जीवन के मूल्य विकसित और फलित होते हैं। आदिकाल से संसार इन मूल्यों को संसार में बाहर खोजता रहा है, परंतु जब जिसको भी ये मूल्य प्राप्त हुए—भीतर से ही हुए हैं।

यही कारण है कि युगों-युगों से ऋषियों, तपस्वियों, महापुरुषों, गुरुजनों ने जीवन में ईश्वर के प्रति विश्वास और आस्तिकता को इतना महत्त्व दिया है। प्रत्येक कर्म, आचरण, व्यवहार, चिंतन आदि की दिशा व केंद्र केवल और केवल ईश्वर और उसकी सर्वव्यापी सत्ता हो—यही प्रेरणा सत्संकल्प के इस प्रथम सोपान में है।

जीवन में ईश्वरत्व की स्वीकारोक्ति और आस्तिकता के मार्ग का वरण—यही मर्म उपदिष्ट है, इस प्रारंभिक चरण में। इस सूत्र का दूसरा सोपान है—**ईश्वर को न्यायकारी सत्ता के रूप में स्वीकार करना**। ईश्वर को न्यायकारी मानने का तात्पर्य है, उसके शाश्वत कर्मफल सिद्धांत को मानना। अच्छे कर्मों के सत्परिणाम और बुरे कर्मों के दुष्परिणाम सुनिश्चित प्राप्त होते हैं।

इस तथ्य पर यदि अटूट विश्वास हो जाए, भीतर यह भावना प्रबल हो उठे कि सत्कर्म ही सुफल देते हैं—बुरे कर्म नहीं, तो फिर व्यक्ति निरंतर सत्कर्मों की दिशा में ही प्रयत्न करता है। सत्कर्मों में प्रवृत्ति से ही जीवन में सुख-शांति और समृद्धि आती है।

कर्म करना मनुष्य का सहज स्वभाव है, लेकिन कर्म के पीछे की प्रेरणा, चिंतन और भावना की उस कर्म के परिणाम को लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अच्छी सोच और अच्छे भाव से किए गए कर्म सदैव सत्परिणाम ही प्रस्तुत करते हैं। स्वार्थ, अहं, लालच, ईर्ष्या, द्वेष आदि से प्रेरित कर्म अंततः दुःख और पीड़ा ही उत्पन्न करते हैं। अतः कर्मों की शुद्धता का आधार विचार-शुद्धि और भाव-शुद्धि है।

कर्म, विचार और भाव की शुद्धता जीवन में धैर्य, संयम, सहिष्णुता, सहनशीलता, संतोष, परोपकार, पुरुषार्थ जैसे उदात्त जीवनमूल्यों को उत्पन्न कर जीवन को धन्य बना देते हैं। सत्कर्मों में प्रवृत्ति का मार्ग आत्मकल्याण और लोक-कल्याण का सर्वोत्तम उपाय है। यह सूत्र इसी प्रेरणा को प्रकट करता है। ईश्वर को न्यायकारी स्वीकार कर लेने मात्र से जीवन सत्कर्म की दिशा में आगे बढ़ने लगता है।

सत्कर्म के मार्ग पर चलते रहने से मोह, माया, भोग, कामना, अहंकार, इंद्रियजन्य विषयों के बंधन धीरे-धीरे पीछे छूटते जाते हैं। इन आंतरिक शत्रुओं से छुटकारा पाने के लिए अलग से कोई साधना, उपाय करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। जीवन में सत्कर्मों की निरंतरता ही सभी प्रकार के अभीष्ट की प्राप्ति कराने में समर्थ होती है। यही मर्म एवं प्रेरणा प्रकाश इस सूत्र के द्वितीय सोपान में समाहित है।

जीवन में सत्कर्मों की प्रवृत्ति उत्पन्न करने का सर्वसुलभ सर्वोत्तम उपाय है—ईश्वरीय न्याय में विश्वास। सूत्र का तीसरा सोपान—**ईश्वर के अनुशासन को जीवन में उतारना है**। ईश्वरीय अनुशासन हमारे जीवन एवं जगत् में शाश्वत नियमों, विधानों के रूप में कार्य करता है। वेदों में इसे 'ऋत' कहा गया है। इस विधान का संचालन ईश्वर अपनी शक्ति से करते हैं।

शास्त्रों में शक्ति को प्रकृति भी कहा गया है। मूल प्रकृति ही ईश्वरीय शक्ति के रूप में समस्त

संसार का पोषण, संरक्षण और नियमन करती है। जड़-चेतन सर्वत्र क्रियाकलापों के संचालन के मूल में प्रकृतिरूपी ईश्वरीय शक्ति ही विद्यमान है।

ईश्वर के इस प्रकृतिजन्य विधान की अवहेलना से ही समस्त रोग, शोक, संताप और संकट उत्पन्न होते हैं। आज भी समस्त संकटों-आपदाओं के मूल में यही कारण विद्यमान है। वस्तुतः मनुष्य का जीवन स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति के नियमों से आबद्ध है।

इन नियमों को जानकर, इनके अनुकूल अनुशासित जीवन का निर्वहन स्वस्थ, आरोग्य, प्रसन्नता व आनंद को प्राप्त करता है।

यह समय सारी दुनिया को इसी मर्म से अवगत कराने का है। प्रकृति के संरक्षण में ही अस्तित्व पोषित, विकसित और गतिशील रह सकता है। जीवन की सार्थकता का मार्ग प्रकृति के विधान से होकर ही निकलता है।

मानवीय कलेवर में अंतर्निहित सभी दिव्य संभावनाओं को प्रकृति-अनुरूप जीवन स्वतः उभार देता है। संभावनाओं-क्षमताओं का विकास और उत्कर्ष की प्राप्ति प्रकृति के अनुशासन में रहने से सहज संभव हो पाती है। बीज को वृक्ष और जीवात्मा को परमात्मा बनाने वाली परमशक्ति प्रकृति ही है। क्या करें ? क्या न करें ? का समुचित उत्तर कर्त्तव्यशास्त्रों, नीतिशास्त्रों में पर्याप्त मिल जाता है, परंतु यहाँ तो इतना समझ लेना ही पर्याप्त है कि हम अपनी बाह्य इंद्रियों और अतींद्रियों को प्रकृति के नियमों के अनुसार नियंत्रित, संयमित बनाए रखेंगे।

इतना कर लेने मात्र से भी बहुत कुछ बात बन जाती है। प्रथम सूत्र की ये तीन, अमूल्य प्रेरणाएँ हमारे जीवन को अद्भुत रूप से समग्रता, संपूर्णता और व्यापकता की ओर अग्रसर बना देती हैं।

यही सामान्य जीवन में असामान्य-असाधारण व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के रूप में प्रकट होने लगता है। जीवन देवत्व की दिशा में स्वतः उन्मुख हो उठता है।

(क्रमशः)

राजा उदयन ने बौद्ध भिक्षु संघ को चादरों का एक बड़ा बंडल दान में भिजवाया। उसे लेने प्रधान भिक्षु स्वयं पहुँचे। प्रधान भिक्षु से राजा का वार्त्तालाप चलने लगा। राजा ने पूछा—"भंते! आप इन चादरों का क्या उपयोग करेंगे ?" प्रधान भिक्षु बोले—"महाराज! संघ बड़ा है। जिन भिक्षुओं के वस्त्र व चादरें पुरानी हो गई हैं, इन्हें उनमें वितरित करेंगे।"

राजा ने पुनः पूछा—"फिर उनकी पुरानी चादरों का क्या होगा ?" "उनसे हम बिस्तर पर बिछाने वाली चादरें बनाएँगे"—प्रधान भिक्षु ने कहा। "फिर बिस्तर की पुरानी चादरों का क्या होगा ?"—राजा ने प्रश्न किया। "उनसे हम तकियों पर चढ़ाने वाले गिलाफ बनाएँगे।"—उन्हें उत्तर मिला।

राजा उदयन के मन में अभी और जिज्ञासा थी। उन्होंने पूछा—"फिर पुराने गिलाफों का आप क्या करेंगे ?" प्रधान भिक्षु बोले—"उन्हें जोड़-गाँठकर झाड़ू-पोंछे के इस्तेमाल में लेंगे।" राजा बोले—"क्या आपने हर वस्तु के पुनरोपयोग की व्यवस्था बना रखी है ?"

प्रधान भिक्षु बोले—"हमने यही सीखा है राजन्! एक भी अंश व्यर्थ क्यों जाने दिया जाए।" यह सुनकर राजा उदयन अत्यंत प्रभावित हुए। उन्होंने अपने राज्य में भी वैसी ही अर्थनीति लागू करने का आदेश दिया।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

ईश्वर समर्पण

समर्पण जिसे कहते हैं, वह सर्वतोभावेन ईश्वर के समक्ष अपनी अहंवृत्ति को सौंपकर, मुक्त भाव से एवं सच्चे हृदय से उसके कार्य को करने का सेवा-विधान है। समर्पण में कुचेष्टा नहीं होती एवं जो होता है, वह ईश्वर के समक्ष ही होता है। उसे ही बुद्धि अर्पित करके होता है। ऐसा समर्पण जहाँ होगा, वहाँ पर भीतरी आनंद और संतोषपूर्ण उल्लास की कभी कमी नहीं आने पाएगी। मन अविचल भाव से ईश्वर के अंतर्नाद को सुनेगा तथा चेतना फिर कभी विभ्रमित नहीं हो सकेगी।

इसे ही समर्पण कहते हैं, पूजा-उपचार वाला समर्पण नहीं, येन-केन प्रकारेण ईश्वर के समक्ष माथा टेक देने वाला नहीं, तथा उसे अपने व्यवहार में न उतार मात्र बाह्य गतिविधियों तक सीमित रखने वाला नहीं। ईश्वर मिलता है हृदय की तीव्र उत्कंठा द्वारा, उसे प्रत्येक कार्य का आधार बनाकर जीवन जीने से।

ईश्वर के बिना कुछ घटित न हो सके, ऐसी प्रबल धारणा बनाकर तथा उस अनुसार कार्य करने से समर्पण होता है। हमारी संपूर्ण चेतना ईश्वर को समर्पित हो सके, इसके लिए अंतस् की श्रद्धा पर एक दृढ़ विश्वास चाहिए। बिना रुके आगे बढ़ने की नीति, ईश्वर से सामीप्य स्थापित कर उसे ही प्रबलतम वेग से पुकारने की नीति, उसके सिवाय अन्य किसी को ऊँचा स्थान न देने की नीति एवं कुछ भी आपकी मानसिक शांति तथा स्वभाव को प्रभावित न कर सके, उस ईश्वर को ही अपना सर्वस्व मान उसी के दिशाकदमों पर चलने की नीति ही समर्पण की नीति है। उसी की निराकार भूमि को हृदय से स्वीकार, मतभावों को उसी को अर्पण कर तथा अनेकता में एकता के दर्शन करने से हम ईश्वर से एकरूप होते हैं।

यही ईश्वर के प्रति समर्पण की वास्तविक परिभाषा है। इसके उपरांत प्रश्न आता है कि यदि ईश्वर समर्पण ही सब कुछ है तो उसे कैसे कार्यों में, प्रयोगों एवं अनुसंधानों में लगाया जाए। यहीं पर हम इस तथ्य से परिचित होते हैं कि अपनी वास्तविक चेतना पर एकाधिकार प्राप्त कर, स्वयं को जागरूक एवं संवेदनशील बनाकर हम अपना तथा विश्व-समाज का कल्याण कर सकते हैं। इसे ही प्रतिभा का जागरण तथा उससे लोक-मंगल की रीति-नीति को क्रियान्वित करना कहेंगे।

यह होता है अपने अंदर के ईश्वरीय तत्त्व को बाहर लाने से, उसे समाज और संसार की गतिविधियों में उचित निर्णय लेने तथा आदर्श दिशाक्रम प्रस्तुत करने हेतु बाध्य करने से। हमारी चेतना से जो उच्च-से-उच्च कार्य हो सकता है, वह आत्म-परिष्कार का है तथा यदि इस परिष्कृत चिंतन से हम लोक-कल्याण के निमित्त कुछ भी करते हैं तो वही धर्म है।

इसे ही चेतना का अधिकार कहेंगे तथा यह आता स्वयं की उज्ज्वल संभावना के दिग्दर्शन से है। यही वह क्रिया है, जिसे करने के लिए मनुष्य को यहाँ भेजा गया है, ताकि वह समझे कि वह एक महान तत्त्व, जिसे ईश्वर कहा गया, का प्रतीक-प्रतिनिधि है। ईश्वरीयता यदि हर ओर से ओत-प्रोत हो तो जीवन धन्य बन जाता है। चेतना का जागरण तब इस जगत् के कल्याण में नियोजित होने लगता है। यही परम कल्याण का मार्ग है तथा ईश्वर समर्पण इसका मूल आधार है। ❑

मनुष्य का वास्तविक वैभव हैं संस्कार

मनुष्य का वास्तविक वैभव उसके ज्ञान या पद में नहीं, बल्कि उसके संस्कारों में निहित है। ज्ञान किसी को बाहरी जगत् का अधिकारी बना सकता है, किंतु संस्कार ही उसे भीतर से महान बनाते हैं। यही कारण है कि भारत की प्राचीन शिक्षापद्धति केवल बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह विद्यार्थियों के चारित्रिक उत्थान और नैतिक परिष्कार का भी साधन थी। प्राचीन भारत में शिक्षा का केंद्र गुरुकुल हुआ करते थे।

वहाँ विद्यार्थी केवल गणित, व्याकरण, वेद-वेदांग या अस्त्र-शस्त्र चलाना ही नहीं सीखते थे, बल्कि सबसे पहले स्व-नियंत्रण, अनुशासन और संयम का अभ्यास करते थे। गुरु का आचरण ही विद्यार्थियों के लिए जीवंत पाठ्यपुस्तक होता था। शिष्य उनके आचार-विचार से प्रेरणा लेते और जीवन में उन मूल्यों को उतारते थे। यही कारण था कि प्राचीन भारत ने ऐसे आचार्य दिए, जिन्होंने न केवल समाज, बल्कि संपूर्ण मानवता को दिशा दी।

मनुष्य का मन यदि असंयमित हो तो वह उसका सबसे बड़ा शत्रु सिद्ध होता है। मन में उठने वाली वासनाएँ, इच्छाएँ और विकार व्यक्ति को भटका देते हैं। इसी को रोकने के लिए शास्त्रों ने कहा है—'**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।**' अर्थात मन ही मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण है। यदि मन विकारों में फँस गया तो वह पतन का मार्ग प्रशस्त करेगा और यदि साधना द्वारा शुद्ध कर लिया गया तो वही मुक्ति का द्वार बन जाएगा।

आज की शिक्षापद्धति का बड़ा संकट यही है कि वह केवल बुद्धि-विकास पर केंद्रित हो गई है। अंक, डिग्री और प्रमाणपत्र जीवन की सफलता का पैमाना मान लिए गए हैं, परंतु यदि इस प्रक्रिया में मन और चरित्र का विकास न हो, तो ऐसे शिक्षित लोग समाज में अराजकता ही फैलाते हैं।

एक विद्वान यदि ईमानदार न हो तो उसका ज्ञान समाज के लिए खतरा बन सकता है। एक बुद्धिमान यदि चरित्रहीन हो तो उसकी प्रतिभा विध्वंस का साधन बन सकती है। एक शिक्षित यदि संवेदनहीन हो तो वह समाज को बाँधने के बजाय तोड़ देगा। इसलिए शिक्षा का पहला लक्ष्य यह होना चाहिए कि विद्यार्थी सुसंस्कारी और आत्मानुशासित नागरिक बने।

संस्कार मनुष्य को भीतर से मजबूत बनाते हैं। वे हमें यह सिखाते हैं कि जीवन का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत सुख-सुविधा जुटाना नहीं है, बल्कि समाज और मानवता के लिए योगदान देना है। संस्कार हमें कठिनाइयों से लड़ने का साहस देते हैं। वे हमें वाणी की मधुरता, व्यवहार की शालीनता और आचरण की पवित्रता सिखाते हैं। वे लोभ, ईर्ष्या और स्वार्थ जैसी नकारात्मक प्रवृत्तियों से बचाकर हमें सेवा, सहयोग और परोपकार की राह पर ले जाते हैं।

जीवन में कठिनाइयाँ आना स्वाभाविक है। इन्हें टालना संभव नहीं, परंतु इन्हीं कठिनाइयों में यह परखा जाता है कि मनुष्य का मन कितना दृढ़ और संस्कारित है। आलस्य और प्रमाद मनुष्य को

►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄

नीचे गिराते हैं, परिश्रम और आत्मसंयम उसे ऊपर उठाते हैं। स्वार्थ और छल जीवन को अंधकारमय करते हैं, त्याग और सेवा जीवन को दिव्य बना देते हैं।

वास्तव में विपत्तियाँ ही वह कसौटी हैं, जिस पर मनुष्य के संस्कार परखे जाते हैं। शास्त्रों और संतों ने बार-बार यही शिक्षा दी है कि स्वयं को जीतना ही सबसे बड़ी विजय है। वाणी मधुर हो, कर्म पवित्र हों और विचार उदात्त हों। धन-संपत्ति क्षणभंगुर है, पर संस्कार स्थायी हैं।

यह सत्य है कि भौतिक प्रगति आवश्यक है, परंतु यदि उसके साथ आंतरिक संस्कार न हों तो वह प्रगति अधूरी और विनाशकारी सिद्ध होगी। आज जब संसार भौतिकता, स्पर्धा और उपभोगवाद की दौड़ में उलझा हुआ है, तब यह और भी आवश्यक हो गया है कि हम अपने मन को संस्कारित करें।

विद्यालय और विश्वविद्यालय केवल शिक्षा के केंद्र न होकर, चरित्र निर्माण के तीर्थ बनें। घर-परिवार में माता-पिता बच्चों को केवल सुविधाएँ ही न दें, बल्कि अच्छे संस्कार भी दें। समाज को अपने उत्सव और परंपराओं के माध्यम से लोगों में परस्पर प्रेम, सहयोग और सेवा-भाव जगाना चाहिए। संस्कारित मन ही जीवन को सच्चा वैभव प्रदान करता है। शिक्षा, धन, पद, प्रतिष्ठा—ये सब तभी सार्थक हैं जब उनके साथ आंतरिक शुचिता और सुसंस्कार जुड़े हों।

जो मनुष्य अपने मन को अनुशासित करता है, वही सच्चे अर्थों में विजयी कहलाता है। अतः हमें यह दृढ़ संकल्प करना चाहिए कि हम अपने जीवन में केवल सफलता नहीं, बल्कि संस्कार और आत्मविकास को प्राथमिकता देंगे। यही हमारे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी और यही सच्चे अर्थों में मानव जीवन का लक्ष्य है। □

मरणासन्न माँ ने अपने पुत्र से करुणासिक्त वाणी में कहा—"मुझे दुःख है बेटा कि मैं तुझे पढ़ा न सकी और अब तो मेरे पास समय भी नहीं शेष है। तेरे लिए सारा संसार ही पाठशाला है। तुझे जहाँ से जो मिल सके वहाँ से सीखना, वही तेरे काम आएगा।" यह कह माँ ने सदा के लिए अपनी आँखें मूँद लीं। पुत्र ने माँ की सीख गाँठ बाँध ली। अपने दादा जी को पत्थर तोड़ते देख, वह पत्थर तोड़ने का काम करने लगा। इस संबंध में उसका ज्ञान प्रखर हुआ तो वह गोताखोरी का काम करने लगा और समुद्री चट्टानों के विषय में जानकारी प्राप्त कर ली। इसके बाद उसने संगमरमर तराश के घर नौकरी कर ली और पत्थरों के गुणों का अध्ययन करने लगा। धीरे-धीरे लाल रंग के पत्थर के संदर्भ में उसका ज्ञान उच्च कोटि का हो गया। तब उसने अपने अनुभवों को लिपिबद्ध करना प्रारंभ किया। अपने अनुभव से प्राप्त ज्ञान को जब उसने पढ़े-लिखे लोगों के बीच बताना प्रारंभ किया तो वे भी आश्चर्यचकित रह गए। उसकी ख्याति अब मात्र इंग्लैंड में ही नहीं, समूचे विश्व में फैलने लगी थी। यह बालक और कोई नहीं, बल्कि ह्यू मिलर था, जो अपनी माँ की सीख के कारण विश्वप्रसिद्ध भू-गर्भशास्त्री बना।

अलौकिक विभूतिसंपन्न संत गजानन महाराज

शेगाँव के संत श्री गजानन महाराज शिरडी के साईं बाबा के समकालीन थे। श्री गजानन महाराज के बारे में सुना जाता है कि वे अचानक ही शेगाँव में जूठी पत्तल से जूठन खाते हुए लोगों को दिख पड़े थे।

उनको सर्वप्रथम देखने वाले बंकरलाल अग्रवाल तथा दामोदर पंत कुलकर्णी थे, जो बाद में उनके अनन्य भक्त भी हुए। भगवान योगेश्वर कृष्ण ने भी द्रौपदी के जूठे बरतनों में लगे अन्न-कण का भक्षण कर यह संदेश दिया कि अन्न को व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। अन्न का एक-एक कण अमूल्य है।

यही संदेश संत गजानन महाराज ने शेगाँव के निवासियों को जूठी पत्तल से जूठन खाते हुए दिया था। संत श्री गजानन महाराज तेजस्वी एवं सामर्थ्यशाली थे। वे शरीर पर बंडी जैसा वस्त्र पहना करते थे। उनके माता-पिता व कुल नाम के संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। जिस दिन ये महामानव संसार के कल्याणार्थ शेगाँव में प्रकट हुए, वह दिन था माघ वदी सप्तमी—23 फरवरी, 1878।

अचानक प्रकट हुए संत गजानन फिर कुछ दिन तक शेगाँव में दिखाई नहीं दिए तो उनके भक्त बंकरलाल व्याकुल होने लगे। बंकरलाल की श्रद्धा महाराज के प्रति बढ़ती ही जा रही थी, महाराज के शेगाँव में न दिखने के कारण बंकरलाल का मन खिन्न हो गया। उन्हें अन्न-जल कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। वे चिंतित रहने लगे थे। उनका मन अपने काम में नहीं लगता था।

एक दिन शेगाँव में एक कीर्तनकार आए, उनका नाम गोविंद बुआ राकरीकर था, उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। उनकी प्रसिद्धि सुनकर बंकरलाल भी कीर्तन-श्रवण के लिए मंदिर पहुँचे, जहाँ कीर्तन का आयोजन किया गया था। वहीं उन्हें पुनः गजानन महाराज के दर्शन हुए, जैसे साक्षात् भगवान के दर्शन हुए हों। ऐसा अनुभव कर बंकरलाल प्रसन्न हो उठे।

बंकरलाल ने उन्हें भोजन के लिए पूछा तो श्री गजानन महाराज ने बंकरलाल को भाजी भाकर (सब्जी की विशेष प्रकार की रोटी) लाने के लिए कहा। महाराज ने भाजी भाकर का प्रेमपूर्वक प्रसाद ग्रहण किया, इसीलिए आज भी शेगाँव में भाकर का ही प्रसाद वितरित किया जाता है, जो कि शेगाँव श्री-क्षेत्र का प्रमुख प्रसाद है।

कीर्तन करते समय कीर्तनकार एक श्लोक कहते हुए कोई शब्द भूल गए तो महाराज ने तत्काल वो श्लोक पूर्ण कर उसका अर्थ भी बता दिया। कीर्तनकार उनके चरणों में नतमस्तक हो गए। उन्होंने महाराज से मंदिर में चलने का आग्रह किया, किंतु महाराज ने कहा कि मैं जहाँ हूँ, वहीं ठीक हूँ। मैं यहीं पर बैठकर आपके कीर्तनों का श्रवण करता रहूँगा।

संतश्रेष्ठ गजानन महाराज दिव्य, अलौकिक एवं विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उन्हें किसी भी घटना का पूर्व अनुमान तो होता ही था, साथ ही सामने वाले व्यक्ति के मन की भावनाओं को भी वे जानते थे तथा उस व्यक्ति के अंतर्मन से भी एकाकार होते थे। वे कभी-कभी वेद की ऋचाओं का सस्वर गायन भी करते थे। वे मुख से गण-गणात बोलते भजन भी गाते थे। वैदिक ब्राह्मण भी उनको सुनकर चकित हो जाया करते थे।

उनके अलौकिक व दिव्य व्यक्तित्व से संबंधित कुछ घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। एक बार महाराज आड़गाँव में गए, गरमी के दिन थे, धूप तेज व कड़क थी, जंगल में कहीं भी पानी नहीं था व पास में ही अकोली गाँव था। वहाँ महाराज दोपहर को रुके थे। वहाँ उन्हें प्यास लगी।

उन्होंने आस-पास पानी ढूँढ़ने का प्रयास किया, किंतु उन्हें पानी कहीं भी नहीं मिला। वहीं थोड़ी दूर पर एक किसान भास्कर पाटिल खेत में हल चला रहे थे। उनके खेत के पास ही पेड़ के नीचे एक मटके में पानी था, वहाँ महाराज गए, पाटिल से पानी माँगने लगे तो भास्कर पाटिल ने पानी देने से मना कर दिया और कहा कि पास में सूखा कुआँ है, वहाँ से पानी पी लो।

महाराज उस कुएँ के पास गए तथा वहीं एक शिला पर समाधि लगाकर बैठ गए। उन्होंने भगवान को स्मरण किया और एक चमत्कार हुआ। सूखे कुएँ में पानी भर गया, जिसको पीकर महाराज तृप्त हो गए। यह घटना देखकर भास्कर पाटिल को आश्चर्य हुआ, वह महाराज के चरणों में नतमस्तक हो गया तथा कहने लगा कि मेरे से बहुत बड़ी भूल हो गई, कृपया मुझे क्षमा करें।

गाँव के आस-पास के लोगों को इस घटना की जानकारी प्राप्त हुई तो लोग महाराज के दर्शन करने आने लगे। एक बार उन्होंने शेगाँव के भगवान शंकर के मंदिर में आए हुए सज्जन गोविंद बुआ राकरीकर के मदमस्त हुए घोड़े को शांत किया था। वह घोड़ा लोगों को बहुत परेशान करता था, किसी को काटता, गिराता, घायल कर देता। उसे साँकल से बाँधकर रखा जाता था, किंतु उस दिन राकरीकर साँकल लाना भूल गए थे, डोरी से बाँधा हुआ घोड़ा मंदिर परिसर के बाहर खड़ा था, रात्रि भी हो चुकी थी।

ऐसे समय श्री गजानन महाराज घोड़े के पैरों के पास जाकर सो गए व मुख से भजन गाते रहे। राकरीकर को लगा कि घोड़ा किसी को परेशान तो नहीं कर रहा, यह देखने के लिए वे उठे तो उन्होंने देखा कि घोड़ा शांत खड़ा है तथा महाराज उसके पैरों के बीच लेटे हुए हैं। राकरीकर को आश्चर्य हुआ, फिर वह भी महाराज के सामने नतमस्तक हो गया।

एक बार लोकमान्य तिलक, शिवाजी जयंती उत्सव में व्याख्यान देने के लिए अकोला पधारे। दामले, कोहलटकर, खापर्डे जैसे विद्वान वहाँ एकत्रित हुए थे। तिलक जी कार्यक्रम के अध्यक्ष थे। स्थानीय राजनेताओं का ऐसा मानना था कि इस कार्यक्रम के लिए गजानन महाराज को आमंत्रित करना चाहिए एवं उनका आशीर्वाद हमें मिलना चाहिए। दादा साहेब खापर्डे महाराज को निमंत्रण देने शेगाँव गए।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

—ऋग्वेद-1/164/46

अर्थात उस एक ही परमात्मा को ज्ञानी जन भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं।

महाराज ने निमंत्रण स्वीकार करते हुए कहा—"बाल गंगाधर तिलक राष्ट्रभक्त हैं। मैं अवश्य आऊँगा।" शक संवत्—1830 अक्षय तृतीया के दिन गजानन महाराज सभा में पधारे थे तथा उन्होंने अपने आशीर्वचन भी प्रदान किए। महाराज के आशीर्वचनों से प्रभावित होकर तिलक जी ने भगवद्गीता पर गीता भाष्य (कर्मयोग) लिखा था।

ऐसी अलौकिक व दिव्य विभूति ने भाद्रपद शुदी, पंचमी के दिन सन् 1910 को जय गजानन कहते हुए परब्रह्म सच्चिदानंद के चरणों में अपनी देह रखकर समाधि ली। आज भी उनका जीवन अनेकों के लिए प्रेरणास्रोत है। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

धनार्जन की कला भी धार्मिक बने

प्रतिभा ईश्वर का अनुपम उपहार है। लोक-कल्याण के लिए सौंपा गया दिव्य वरदान है। प्रतिभाशाली व्यक्ति केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि में न उलझकर, अपनी कला का उपयोग समाज और मानवता की सेवा में करे, तभी उसका जीवन सार्थक माना जा सकता है। सच्चा कलाकार वही है, जिसकी कला में मनोरंजन के साथ-साथ जीवन सुधार और समाज निर्माण की सामर्थ्य हो।

कला का उद्‌देश्य केवल चकाचौंध पैदा करना नहीं, वरन जीवन को ऊँचा उठाना और संस्कारवान बनाना होना चाहिए। साहित्य, संगीत, चित्रकला, नृत्य, नाटक, वास्तुकला, पत्रकारिता ये सब विधाएँ यदि केवल बाहरी आकर्षण और तात्कालिक सुख तक सीमित रह जाएँ तो उनका मूल्य अधूरा रहेगा।

प्रतिभाशाली व्यक्ति पर यह उत्तरदायित्व है कि वह अपनी रचना, अपनी अभिव्यक्ति की सामर्थ्य को धर्म, नीति और लोक-मंगल से जोड़े। उसकी हर कृति समाज को एक उच्च आदर्श की ओर ले जाने वाली होनी चाहिए।

आज के समय में अनेक क्षेत्रों—साहित्य, कला, संगीत, विज्ञान, पत्रकारिता, राजनीति में प्रतिभाएँ उभर रही हैं, किंतु उनमें से अधिकांश का प्रयोजन केवल तात्कालिक यश और भौतिक लाभ की प्राप्ति रह गया है। परिणामस्वरूप समाज को वे दिशा नहीं दे पाते, वरन भ्रम और मोहजाल में फँसाते हैं। धर्म का तात्पर्य मात्र पूजा-पाठ या कर्मकांड नहीं है। धर्म का वास्तविक अर्थ है—जीवन को सत्यमय, सुंदर और उपयोगी बनाना।

जब कला और प्रतिभा धर्म से जुड़ते हैं, तभी वह दिव्य बनते हैं। कलाकार की सच्ची सफलता इसी में है कि उसकी रचना व्यक्ति के मन में सद्‌भावना, आदर्श और नैतिकता का बीज रोप सके। इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक कलाकार और प्रतिभाशाली व्यक्ति अपनी रचनात्मक शक्ति को केवल विलास और मनोरंजन तक सीमित न रखे, वरन उसे जनकल्याण की दिशा में प्रवाहित करे। तभी उसकी प्रतिभा का सच्चा मूल्य आँका जाएगा और तभी वह ईश्वरप्रदत्त वरदान का वास्तविक ऋण चुकाने में समर्थ होगा।

प्रतिभा ईश्वर का अनुपम उपहार है। यह केवल व्यक्तिगत यश, भोग-विलास या स्वार्थ सिद्धि का साधन नहीं, बल्कि समाज और मानवता के उत्थान के लिए मिली दिव्य धरोहर है।

कलाकार, साहित्यकार, वैज्ञानिक, राजनेता, पत्रकार या उद्यमी—जिसे भी यह शक्ति प्राप्त हुई है, उसका प्रथम कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रतिभा को धर्म, नीति और लोक-मंगल से जोड़े। जब तक किसी की साधना समाज को ऊँचाई और जीवन को दिशा न दे, तब तक उसकी उपलब्धि अधूरी मानी जाती है। कला का उद्‌देश्य केवल मनोरंजन या चकाचौंध तक सीमित नहीं रहना चाहिए। वह जीवन सुधार, आत्मोत्थान और संस्कार निर्माण की प्रेरणा का माध्यम बननी चाहिए।

साहित्य, संगीत, नृत्य, नाटक, वास्तुकला, पत्रकारिता, विज्ञान—सभी विधाएँ तभी सार्थक हैं, जब वे जनमानस को ऊँचा उठाएँ और उसकी दुर्बलताओं को दूर करें। धर्म का भी यही स्वरूप

है। वह केवल पूजा-पाठ या कर्मकांड तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन को सत्य, सुंदर और उपयोगी बनाने की प्रेरणा है।

आज अधिकांश प्रतिभाएँ भौतिक आकर्षण, यश और धन की प्राप्ति में उलझ गई हैं। परिणामस्वरूप वे दिशा देने के बजाय मोह-जाल और अशांति को जन्म देती हैं। यदि संयम, सदाचार और आत्मनियंत्रण का आधार न हो तो प्रतिभा स्वयं भी पतन का कारण बन जाती है और समाज को भी अवनति की ओर धकेलती है।

जीवन का वास्तविक सौंदर्य संयम है। अतिरेक और व्यसन शरीर को रोगग्रस्त, मन को अशांत और आत्मा को दुर्बल बना देते हैं। वहीं संयमित जीवन, आत्मबल, शांति और प्रगति का आधार है।

परिवार और समाज की शांति भी तभी संभव है, जब उसमें संयम, सरलता और आत्मानुशासन का वातावरण हो। मद्यपान, जुआ, व्यभिचार, भ्रष्टाचार और दिखावे पर आधारित फजूलखर्ची—ये सब असंयम के दुष्परिणाम हैं।

विवाहों और सामाजिक आयोजनों में व्यर्थ का अपव्यय, मृत्यूपरांत भोज और ताम-झाम या राजनीतिक स्वार्थ की होड़ समाज को खोखला बना रही है। इस विपरीत प्रवाह को रोकने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवनशैली में सादगी और मर्यादा को अपनाए। सच्चा वैभव धन का अंबार नहीं, बल्कि संतोष और आत्मानुशासन है।

धन जीवन के लिए आवश्यक है, परंतु यह साधन है, साध्य नहीं। यदि इसे केवल भोग-विलास और दिखावे में नष्ट किया जाए तो वह समाज के लिए विष बन जाता है, किंतु यदि वही धन धर्मोचित मार्ग से अर्जित होकर लोक-मंगल में लगाया जाए तो वह समाज और राष्ट्र के लिए वरदान सिद्ध होता है। भारत का गौरवशाली इतिहास इसी सत्य का साक्षी है।

महाराणा प्रताप जैसे वीरों ने अपने आत्मसम्मान और स्वाधीनता की रक्षा हेतु अकूत कष्ट सह लिए, पर धन और सुविधा के लालच में समझौता नहीं किया। उनकी त्यागमयी प्रेरणा आज भी राष्ट्र जीवन के लिए अमर दीपक है। आज के युग में भी आवश्यकता है कि धनार्जन धर्मसम्मत और नैतिक हो। राजनीति, व्यापार, विज्ञान, कला—हर क्षेत्र में प्रतिभा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत लाभ न होकर समाज और मानवता का कल्याण बने। यदि व्यक्ति अपनी प्रतिभा और साधनाओं को संयम, सदाचार और सेवा से जोड़े, तभी वह ईश्वरप्रदत्त उपहार का ऋण चुका पाएगा।

मानव जीवन दुर्लभ है। इसे क्षणभंगुर तृष्णाओं और दिखावे की दौड़ में न गँवाकर, संयम और लोक-मंगल की साधना में लगाना ही उसका वास्तविक प्रयोजन है। यही मार्ग व्यक्ति को ऊँचाई देता है, परिवार और समाज में शांति स्थापित करता है और राष्ट्र को समृद्धि की ओर ले जाता है। प्रतिभा और धन दोनों तभी सार्थक हैं, जब वे धर्ममय और मानवहितकारी बनें। धनार्जन की कला भी धार्मिक बननी चाहिए। ❑

शास्त्रों में लिखा है कि जितना कष्ट माँ को प्रसव के समय होता है, उससे कई गुना ज्यादा कष्ट बच्चे को माँ के गर्भ से बाहर आते समय होता है। जब वह गर्भ में है तो परमात्मा के सामीप्य को निरंतर अनुभव करता है, परंतु बाहर आते ही, उसे माया भासती है और महसूस होता है कि कष्टमय संसार में आगमन हो गया, ये भाव होते ही पैदा हुआ बालक रोता है—बिलखता है। परमात्मा से मिलन में ही जीवात्मा का आनंद है। उनसे बिछड़ने में ही कष्टों का प्रारंभ है।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

संगीत केवल मनोरंजन नहीं

संगीत मानव जीवन का अभिन्न अंग है। सामान्यत: लोग इसे आनंद, नृत्य गान और मनोरंजन का साधन मानते हैं। निस्संदेह यह कार्य भी संगीत करता है, किंतु इसका महत्त्व इससे कहीं अधिक व्यापक और गहन है।

प्राचीनकाल से ही ऋषियों-मुनियों ने संगीत को '**नाद ब्रह्म**' कहा है और इसे साधना का सशक्त उपकरण माना है। यह न केवल मानसिक शांति और आत्मिक उन्नति का साधन है, बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी उतना ही लाभकारी है।

संगीत मन और इंद्रियों को नियंत्रित करने का सशक्त साधन है। गहन स्वर और ताल से मन की चंचलता थमती है और साधना सरल हो जाती है। यही कारण है कि वेद-मंत्रों, भजनों और कीर्तन का गायन सदा से ध्यान और उपासना का हिस्सा रहा है।

संगीत साधना से आंतरिक एकाग्रता और आत्मिक शांति की अनुभूति सहज रूप से होती है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भी अब संगीत की अद्‌भुत शक्ति को स्वीकार किया है। आज विश्व के अनेक देशों में 'म्यूजिक थेरेपी' या संगीत चिकित्सा द्वारा रोगों का उपचार किया जा रहा है।

भारत में वर्षों से प्रतिष्ठित इस चिकित्सा पद्धति को सन् 1950 में अमेरिका में भी एक चिकित्सकीय पद्धति के रूप में अपनाया गया। वहाँ पर संपन्न प्रयोगों से सिद्ध हुआ कि गंभीर शारीरिक और मानसिक रोगों से पीड़ित रोगी भी संगीत सुनकर तनावमुक्त हुए और उनमें रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ी। संगीत का सीधा प्रभाव मन और मस्तिष्क पर पड़ता है।

यह चिंता, तनाव और अवसाद को दूर कर मानसिक संतुलन स्थापित करता है। हर्षित राग मन को प्रसन्न और उत्साहित करते हैं; जबकि गंभीर राग मन को शांत और स्थिर बनाते हैं। यही कारण है कि संगीत को 'आत्मा की भाषा' कहा जाता है। डॉ० हेनरी, डॉ० एरिक सहित अनेक मनोचिकित्सकों ने अपने शोध अध्ययनों में सिद्ध किया है कि संगीत अवसाद, अनिद्रा, तनाव और मानसिक असंतुलन को दूर करने में अत्यंत प्रभावी है।

यह रोगी को मानसिक शांति ही नहीं, बल्कि नई ऊर्जा और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण भी प्रदान करता है। स्पष्ट है कि संगीत का उद्देश्य मात्र मनोरंजन नहीं है। यह हमारे जीवन में स्वास्थ्य, शांति और आत्मिक प्रगति का साधन है। यदि हम संगीत को केवल मनोरंजन तक सीमित न रखकर साधना और जीवनशैली का अंग बना लें तो यह हमें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्तर पर संतुलित एवं संपन्न बना सकता है। संगीत के प्रभाव को केवल मनोरंजन या भावनात्मक अभिव्यक्ति तक ही सीमित नहीं किया जा सकता।

यह सिद्ध हो चुका है कि संगीत द्वारा अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक बीमारियों का उपचार संभव है। इसी प्रकार युद्ध प्रभावित सैनिकों पर किए गए प्रयोगों से पाया गया कि जब उनकी आत्मविश्वास की शक्ति टूट चुकी थी और गहरी निराशा उन्हें घेर चुकी थी, तब संगीत ने उनमें फिर से जीवन स्फूर्ति का संचार किया। संगीत की मधुर ध्वनियों ने उनकी पीड़ा को कम कर मानसिक संतुलन प्रदान किया।

यह तथ्य भी प्रमाणित हो चुका है कि संगीत का प्रयोग असाध्य रोगियों में भी आश्चर्यजनक परिणाम देता है। अनेक देशों में संगीत-चिकित्सा के केंद्र स्थापित किए गए हैं।

रोगी जब लंबे समय से निराशा और चिंता से घिरा रहता है तो औषधियाँ भी अपेक्षित परिणाम नहीं दे पातीं, ऐसे में संगीत चिकित्सा रोगी की चेतना को झकझोर कर उसे नई जीवन-दृष्टि देती है। वास्तव में संगीत, रोगी के मनोबल को पुनर्जीवित करता है। संगीत की ध्वनियाँ मस्तिष्क की तरंगों को संतुलित करती हैं और उनमें सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह लाती हैं।

गंभीर रोगों से पीड़ित व्यक्तियों पर किए गए अनेक प्रयोगों ने यह सिद्ध किया है कि संगीत से उनका दरद कम हुआ, मानसिक तनाव घटा और उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ी। यह आश्चर्य की बात है कि जहाँ औषधियाँ असफल हो जाती हैं, वहाँ संगीत गहरा प्रभाव दिखाता है।

भारतीय शास्त्रों में भी मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए संगीत को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है। यही कारण है कि हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने ध्यान और साधना के साथ संगीत को जोड़ा।

भजन, कीर्तन और मंत्रोच्चार केवल धार्मिक क्रियाएँ नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य-संतुलन और आत्मिक उत्थान के साधन भी हैं। आज चिकित्सा जगत् यह स्वीकार करता है कि संगीत से अवसाद, तनाव, अनिद्रा और कई प्रकार के मनोविकारों का प्रभावी उपचार संभव है।

यह व्यक्ति के मन को स्थिरता प्रदान करता है और उसे आत्मिक संतोष की अनुभूति भी कराता है। संगीत के राग-रंग और लय-ताल जीवन में संतुलन और सामंजस्य का भाव जगाते हैं। यही कारण है कि संगीत को 'मनुष्य का अदृश्य चिकित्सक' कहा गया है। स्पष्ट है कि संगीत केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि उपचार, स्वास्थ्य और जीवन-संतुलन का सशक्त साधन है।

यदि हम इसे अपने जीवन का नियमित अंग बना लें तो न केवल रोगों से मुक्ति पा सकते हैं, बल्कि शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्तर पर भी स्वस्थ, संतुलित और आनंदमय जीवन जी सकते हैं। ❑

टाल्या के आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कुछ लोगों ने उसे रंगमंच पर अभिनय के लिए खड़ा कर दिया, पर उससे एक शब्द न बोलते बना। दोबारा सिफारिश पाकर वह फिर से रंगमंच पर पहुँचा, पर इस बार भी उसका वही हश्र हुआ। अब उसे लोगों ने अपमानित करना प्रारंभ कर दिया।

टाल्या ने फिर भी हिम्मत न हारी और वह छोटे-छोटे पात्रों के अभिनय करते-करते प्रसिद्ध अभिनेता बन गया। तब किसी ने उससे पूछा—"आपकी सफलता का क्या रहस्य है?" तो टाल्या ने उत्तर दिया—"जितनी बार गिरो, उतनी बार उठो।" सत्य यही है कि गिरकर उठने वाले ही जीवन में सफल होते हैं?

ज्ञानशक्ति का गौरव

भगवान कृष्ण ने अर्जुन को मोह और भ्रम से उबारने के लिए उनके मन की अशांति को दूर करने के लिए ज्ञान की महत्ता समझाते हुए कहा था—''हे अर्जुन! इस संसार में ज्ञान से बढ़कर और कुछ भी पवित्र नहीं है। यह ज्ञान अंत में मनुष्य को पवित्र करता है और उसे परम शांति की ओर ले जाता है।'' ज्ञानशक्ति से ही व्यक्ति के भीतर छिपी शक्ति प्रकट होती है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अंधकार मिटता है, वैसे ही ज्ञान से अज्ञान का अंधकार दूर होता है और जीवन में स्पष्टता आती है। अज्ञान के कारण ही व्यक्ति दुःख और समस्याओं में फँसा रहता है। ज्ञान से ही समाधान मिलता है और व्यक्ति सच्चा सुख अनुभव करता है।

शारीरिक और मानसिक, दोनों तरह के दुःखों का कारण भी अज्ञान ही है। शास्त्रों में कहा गया है—''आध्यात्मिक अज्ञान से ही दुःख का जन्म होता है और ज्ञान के द्वारा ही दुःख समाप्त होता है।''

जिस व्यक्ति ने ज्ञान प्राप्त कर लिया, उसके लिए कोई भी भय, शोक, क्रोध, ईर्ष्या आदि का प्रभाव नहीं रहता। वह व्यक्ति शांत और संतुलित रहता है और सुख-दुःख में समान रहता है। ज्ञान से ही व्यक्ति के भीतर विवेक, धैर्य और सहनशीलता का विकास होता है।

सार में—''ज्ञान ही सबसे बड़ा बल है, जिससे जीवन के सभी कष्ट मिट जाते हैं और सच्चा सुख व शांति प्राप्त होते हैं।'' ❑

मगध में भयंकर अकाल पड़ा। भीषण गरमी से धरती जलने लगी और क्षुधा के कारण प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। सम्राट चंद्रगुप्त ने अपने राजकोष को प्रजा की सहायता के लिए खोल दिया और साथ ही सबको स्थान-स्थान पर यज्ञ करने का निर्देश दिया, ताकि वरुण देव उनसे पुष्ट होकर वृष्टि करने में सक्षम हों। पाटलिपुत्र में भी यज्ञ का आयोजन किया गया, जिसमें सात दिन तक निराहार व्रत का पालन करते हुए सम्राट ने मुख्य यजमान की भूमिका निभाई।

इसके बाद सम्राट व साम्राज्ञी ने बंजर भूमि पर हल चलाना प्रारंभ किया। हल के जमीन पर लगते ही वहाँ एक आकृति प्रकट हुई और सम्राट को संबोधित करते हुए बोली—''लोग श्रम की उपेक्षा कर रहे हैं, इसीलिए यह दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ है, यदि प्रजा पुनः श्रम करना आरंभ कर दे तो खुशहाली के दिन पुनः वापस आ जाएँगे।'' यह दृश्य देखकर प्रजा को श्रम का महत्त्व ज्ञात हुआ और सभी श्रम करने में जुट गए। थोड़े परिश्रम से नहर खोद ली गई और बंजर भूमि पर पानी की धारा बह निकली। श्रम के देवता ने सबको पुनः समृद्ध कर दिया।

संयम अपनाएँ, स्वास्थ्य पाएँ

हमारा शरीर प्रकृति का अनुपम उपहार है, जिसे इस प्रकार रचा गया है कि यदि हम इसे सही ढंग से चलाएँ तो यह बिना किसी दवाई के भी लंबे समय तक स्वस्थ रह सकता है। इसके लिए बस, एक मूलमंत्र याद रखना पर्याप्त है—संयम और संतुलन।

जीवन की भाग-दौड़ में हम या तो शरीर पर आवश्यकता से अधिक बोझ डालते हैं या फिर उसे बिलकुल निष्क्रिय छोड़ देते हैं। ये दोनों ही स्थितियाँ धीरे-धीरे हमें रोगों की ओर ले जाती हैं। यदि हम अपने काम, आराम, भोजन और भावनाओं में संतुलन बना लें तो न केवल बीमारियों से बच सकते हैं, बल्कि लंबे समय तक ऊर्जावान और आनंदमय जीवन जी सकते हैं। शरीर पर अत्याचार करना उतना ही हानिकारक है, जितना कि उसे बेकार छोड़ देना।

जैसे खेत को समय पर पानी, खाद और देख-भाल की आवश्यकता होती है, वैसे ही शरीर को भी समय पर पोषण, श्रम और विश्राम चाहिए। भोजन स्वाद के लिए नहीं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए होना चाहिए। आवश्यकता से अधिक भोजन, वसा और मीठे पदार्थ शरीर को बोझिल और बीमार बना देते हैं; जबकि प्राकृतिक, पौष्टिक और संतुलित आहार ही सच्चा अमृत है।

नियमित शारीरिक श्रम और व्यायाम शरीर में नई ऊर्जा भरते हैं। यह न केवल मांसपेशियों को मजबूत करता है, बल्कि मन को भी हलका और प्रसन्न बनाए रखता है।

इसी तरह मानसिक संतुलन भी उतना ही आवश्यक है। क्रोध, चिंता और नकारात्मक भावनाएँ हमारे तन और मन, दोनों को कमजोर कर देती हैं; जबकि शांत मन, सकारात्मक सोच और संतोष की भावना मानसिक शक्ति प्रदान करते हैं।

समय पर सोना और उठना, प्राकृतिक आहार लेना और शरीर को श्रम से सक्रिय रखना, स्वस्थ जीवन के सरल और अचूक सूत्र हैं। जीवन का वास्तविक सुख धन, पद या भोग में नहीं, बल्कि स्वस्थ शरीर और शांत मन में निहित है।

यदि हम संयमित और संतुलित जीवन जिएँ तो न केवल रोगों से मुक्त रह सकते हैं, बल्कि अपने जीवन को लंबा, सुखमय और सार्थक बना सकते हैं। मानव शरीर में अद्‌भुत क्षमता है कि वह स्वयं को लंबे समय तक स्वस्थ और सक्रिय रख सके, बशर्ते हम उसके साथ तालमेल बिठाकर जीवन जिएँ।

चिकित्सा विज्ञान का भी मानना है कि जीवन का मूलमंत्र 'नियमितता' है। शरीर का हर अंग और तंत्र एक निश्चित लय में काम करता है, और जब हम इस लय का सम्मान करते हैं तो शरीर अपनी पूर्णक्षमता से कार्य करता है।

यदि हम अपनी दिनचर्या, खान-पान और आदतों में अनियमितता ले आते हैं, तो धीरे-धीरे बीमारियाँ पनपने लगती हैं और जीवन की ऊर्जा क्षीण होने लगती है। नियमितता का अर्थ है—जीवन के हर पहलू में संतुलन बनाए रखना। समय पर उठना, समय पर सोना, निश्चित समय पर भोजन और व्यायाम करना—शरीर की कार्यशैली को सुदृढ़ करते हैं।

यह केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि मानसिक शांति और भावनात्मक संतुलन के लिए

भी अनिवार्य है। जैसे पौधों को सही मात्रा में पानी और देख-भाल की जरूरत होती है, वैसे ही हमारे शरीर को भी उचित समय पर पोषण, श्रम और विश्राम चाहिए। आज की भाग-दौड़ भरी जिंदगी में अनियमित दिनचर्या और गलत आदतें हमारे शरीर को धीरे-धीरे कमजोर कर देती हैं।

देर रात तक जागना, समय पर भोजन न करना, अनियंत्रित खान-पान, तनाव जैसी स्थितियाँ शरीर की प्राकृतिक लय को तोड़ देती हैं। इसके विपरीत नियमितता और संयम को अपनाने से शरीर में अद्भुत स्फूर्ति, मन में प्रसन्नता और जीवन में संतुलन बना रहता है।

आधुनिक शोध अध्ययन भी यह सिद्ध कर चुके हैं कि नियमित जीवनशैली अपनाने वाले लोग न केवल लंबी उम्र पाते हैं, बल्कि वे अधिक उत्पादक, ऊर्जावान और रचनात्मक भी होते हैं। नियमितता, संयम और सकारात्मक सोच जीवन के ऐसे मूल सूत्र हैं, जो हर इनसान को रोगमुक्त और प्रसन्न बनाए रख सकते हैं।

जीवन का सुख केवल भौतिक साधनों में नहीं, बल्कि उस सहज आनंद में है, जो एक स्वस्थ शरीर और शांत मन से मिलता है। यदि हम अपने शरीर को प्रकृति की लय में चलने दें, नियमितता और संतुलन को अपना लें तो हम न केवल रोगों से दूर रहेंगे, बल्कि अपने जीवन को उद्देश्यपूर्ण और आनंदमय बना सकेंगे। आजकल की व्यस्त और भाग-दौड़ भरी जिंदगी में सबसे बड़ी कमी है—स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही। आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा, दोनों ही मानते हैं कि शरीर में आत्म-उपचार की अद्भुत शक्ति होती है।

यदि हम सही दिनचर्या और संतुलित जीवन अपनाएँ तो शरीर अनेक रोगों से स्वयं को बचा सकता है, लेकिन अनियमित जीवन, आलस्य और असंतुलित आदतें हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को कमजोर कर देते हैं, जिससे शरीर जल्दी थकान महसूस करता है, बीमारियों का शिकार होता है और मानसिक रूप से भी अस्थिर हो जाता है।

प्राकृतिक जीवनशैली का अर्थ केवल भोजन और व्यायाम तक सीमित नहीं है, बल्कि यह हमारे सोचने, महसूस करने और जीने के तरीके से जुड़ा है। संतुलित आहार, पर्याप्त नींद, समय पर भोजन, रोजाना थोड़ा-बहुत शारीरिक श्रम और सकारात्मक मानसिकता—ये सभी हमारी जीवनशक्ति को बढ़ाते हैं और शरीर से विषैले तत्त्वों को बाहर निकालते हैं।

यदि हम शरीर को स्वाभाविक ढंग से जीने दें तो यह खुद-ब-खुद संतुलन बनाए रखता है। नियमित दिनचर्या और प्रकृति के साथ तालमेल हमें न केवल रोगों से बचाते हैं, बल्कि मन को भी प्रसन्न रखते हैं।

वैज्ञानिक शोध अध्ययन भी बताते हैं कि स्वच्छ हवा, संतुलित आहार और मानसिक शांति हमारे स्वास्थ्य की तीन सबसे मजबूत नींव हैं।

हर व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने जीवन में चार आदतें अवश्य डाले। पहली बाहर खुले वातावरण में समय बिताना, दूसरी रोजाना शारीरिक गतिविधियाँ करना, तीसरी तनाव और नकारात्मक भावनाओं से दूर रहना और चौथी सादा और संतुलित भोजन करना।

ये चार आदतें हमारी प्रतिरक्षा को मजबूत करती हैं, शरीर के विषैले तत्त्वों को दूर करती हैं और मानसिक स्फूर्ति बनाए रखती हैं। प्रकृति हमें बार-बार यह संदेश देती है कि स्वास्थ्य का असली रहस्य सरलता और नियमितता में है।

जब हम अपने शरीर और मन को प्रकृति की लय के साथ जोड़ देते हैं तो जीवन में ऊर्जा, प्रसन्नता और रोग-प्रतिरोधक क्षमता अपने आप बढ़ जाती है। यही सच्चा स्वास्थ्य है—जो दवाइयों से नहीं, बल्कि उचित जीवनशैली से मिलता है। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

खुश रहें, खुशियाँ बाँटें

प्रसन्नता सार्थक जीवन का प्राथमिक आधार है, जिसकी प्राप्ति के लिए हर व्यक्ति जाने-अनजाने में प्रयास करता रहता है, लेकिन यह सही रूप में विरलों को ही उपलब्ध हो पाती है। भूल इसके लिए बाहर के संसाधनों में खोज की होती है; जबकि यह कस्तूरी मृग की भाँति व्यक्ति के अंदर विद्यमान रहती है।

प्रसन्नता का संबंध जीवन के सही समायोजन एवं संतुलित प्रवाह से भी है, जिसके गर्भ से यह स्वतः ही प्रस्फुटित होती है। प्रस्तुत हैं प्रसन्नता की प्राप्ति के कुछ स्वर्णिम सूत्र, जिनको जीवन में धारण करने का प्रयास किया जा सकता है। आत्मस्वीकृति इसका प्रथम चरण है।

आत्मस्वीकृति का अर्थ स्वयं के यथार्थ से परिचय व इसके प्रति सहज स्वीकार्यता का भाव है। हम अच्छे या बुरे, संपूर्ण या अधूरे, सफल या असफल जैसे भी हैं, यह हमारा वर्तमान यथार्थ है, जिसे हम अपने पुरुषार्थ के आधार पर बदल सकते हैं। यह स्वीकारोक्ति एवं इसके परिष्कार का विश्वास प्रसन्नता का ठोस आधार बनता है, जिसके बल पर फिर व्यक्ति हताश-निराश नहीं होता और अपने मौलिक पथ पर अग्रसर होता है।

इसी आधार पर व्यक्ति प्रसन्नता के दूसरे सूत्र की ओर बढ़ता है, जो है दूसरों से प्रतिद्वंद्विता का अभाव। अपनी स्वीकारोक्ति के साथ व्यक्ति अपनी मौलिकता एवं जीवन की संभावनाओं से भी परिचित होता है और अपने स्वधर्म पर अडिग रहता है। ऐसे में दूसरों से तुलना-कटाक्ष के कुचक्र से बचता है। साथ जो जीवन में आगे बढ़ रहे हैं, उनसे प्रेरणा लेकर अपने उत्कर्ष पथ के लिए सीख लेता है और नित्यप्रति अपने ही कीर्तिमान बेहतर करने के कार्य में व्यस्त रहता है, जो उसे प्रसन्नता के भाव के साथ आप्लावित रखते हैं।

इसी के साथ जुड़ा है, दूसरों से अनावश्यक आशा-अपेक्षा का अभाव। दूसरों से आशा-अपेक्षाएँ व्यक्ति को दुःखी एवं व्यथित करती हैं, क्योंकि एक तो आशा-अपेक्षाओं का कोई अंत नहीं होता, दूसरा अन्य व्यक्ति किन परिस्थितियों व कैसी मनःस्थिति से होकर जीवन के पथ से गुजर रहा है, यह सतही रूप से पता नहीं चल पाता। ऐसे में किसी से की गई आशा-अपेक्षाएँ पूर्ण ही हों, यह आवश्यक नहीं।

इस स्थिति में दूसरों से न्यूनतम या शून्य आशा रखने वाले व्यक्ति की प्रसन्नता उसकी मुट्ठी में रहती है, जिसका अभ्यास किया जा सकता है। इसके साथ अपने कर्त्तव्य का पालन प्रसन्नता का सुनिश्चित आधार है। जब भी हम अपने कर्त्तव्य में आलस्य-प्रमाद करते हैं, लापरवाही बरतते हैं, तो एक ग्लानि का भाव हमारे अंदर घर कर जाता है। जीवन में एक उदासी-सी छा जाती है और हम एक तनाव से ग्रसित हो जाते हैं।

अपने कर्त्तव्य के प्रति ईमानदारी रखने एवं जिम्मेदारी के साथ जीवन जीने से हम इस व्याधि से बचे रहते हैं और प्रसन्नता के साथ जीने की स्थिति में होते हैं। स्वस्थ जीवन प्रसन्नता का प्राथमिक आधार है। शरीर से रुग्ण, दुर्बल, जर्जर व्यक्ति किसी भी रूप में जीवन से सुखी, संतुष्ट एवं प्रसन्न नहीं हो सकता।

ऐसा जीवन दुःख, कष्ट, पीड़ा के अंतहीन कुचक्र के मध्य गुजरने के लिए अभिशप्त होता है। अतः शरीर स्वस्थ व नीरोग रहे, इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि हम पौष्टिक आहार लें, उचित व्यायाम एवं श्रम की व्यवस्था करें तथा पर्याप्त नींद को जीवन में स्थान दें।

स्वस्थ शरीर ही लौकिक सुख एवं पारलौकिक आनंद का आधार बनता है, जिसका समुचित ध्यान रखें। किसी के जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप से बचें। परिवार हो या मित्र मंडली या हमारा कार्यस्थल, दूसरों के जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप से बचें।

निंदा, चुगली व प्रपंच से दूर ही रहें। ये देर-सवेर कलह-क्लेश का ही कारण बनते हैं और जीवन की शांति एवं प्रसन्नता का निश्चित रूप से ही हरण करते हैं। इसी के साथ से जरूरी हो जाता है कि हम परस्पर संबंधों में आपसी तालमेल के बिंदुओं को खोजें, जिसके आधार पर सार्थक संवाद हो सके और वाणी के मित-मधुर एवं कल्याणकारी स्वरूप का अभ्यास करें।

विघ्नसंतोषी तत्त्वों के मध्य मौन का सहारा लें और अनावश्यक प्रतिक्रिया से बचें। कृतज्ञता का भाव प्रसन्नता का एक और महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इस धरती पर हमारा जीवन माता-पिता, गुरुजनों से लेकर मित्र-संबंधियों एवं शुभचिंतकों के उपकारों का प्रतिफल रहता है। यहाँ तक कि जिन्हें हम अपना विरोधी मानते हैं, उनका भी हमारे उत्कर्ष में अप्रत्यक्ष योगदान रहता है। अतः सबके उपकारों का सुमिरन करें, इनके प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त करें।

इस भाव को विकसित करते हुए सबसे पहले ईश्वर को धन्यवाद दें, जिसने इस सुरदुर्लभ मानव शरीर के साथ हमें इस मृत्युलोक में भेजा है और इस जीवन को धन्य करने का एक बहुमूल्य अवसर दिया है। अतः जीवन के हर पल का श्रेष्ठतम उपयोग करें। इसके साथ क्षमा का भाव भी स्वतः अनुसरित होता है।

इसके लिए उदारता, सहिष्णुता जैसी सद्गुणों का अभ्यास करें। परिवार में रह रहे लोगों के लिए परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में ऐसा करने के नित्य अगणित अवसर आते हैं, जिनमें संयम, सेवा और सहिष्णुता के सूत्रों का अभ्यास किया जा सकता है।

जीवन में जिज्ञासा और सतत सीखने का भाव भी व्यक्ति को व्यस्त रखता है। ऐसा भाव ही हमें हर व्यक्ति और परिस्थिति से कुछ सीखने का अवसर देता है। विकट पलों में भी ऐसा व्यक्ति सीखता है और जीवन को एक पाठशाला मानकर हर स्थिति में आगे बढ़ते हुए प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

इसके साथ खाली समय में अपने शौक को पूरा करने का समय भी निकालें और अपनी प्रतिभा को अभिव्यक्त होने का अवसर दें।

ये सभी गुण जीवन में स्वतः स्फूर्ति, आशा, उत्साह एवं प्रसन्नता के आधार बनते हैं। जरूरतमंदों की सेवा-सहायता भी जीवन में सार्थकता की अनुभूति भरती है। इसके लिए भी अवसर खोजते रहें।

अपनी व्यस्त दिनचर्या के बीच प्रकृति के सान्निध्य में कुछ पल अवश्य बिताएँ, ये निश्चित रूप से तनाव का हरण करेंगे, जीवन को शांति एवं प्रसन्नता से भरने वाले सिद्ध होंगे।

इसके लिए कुछ मिनट व सप्ताह के अंत में कुछ घंटे नियमित निकालें। ऐसा करने के साथ ही तन-मन व अंतरात्मा को तरोताजा कर, जीवन में नई ऊर्जा व सकारात्मकता का संचार करें। इस तरह जीवन की छोटी-छोटी चीजों का आनंद लें। छोटे-छोटे कदमों के साथ अपने ध्येय की ओर बढ़ते रहें।

छोटी-छोटी सफलताओं को प्राप्त करें, इनका उत्सव मनाएँ और प्रसन्न रहें तथा दूसरों के मध्य भी इस भाव का प्रसार करें। □

वाणी के विविध आयाम

मनुष्य जीवन में वाणी का स्थान अद्वितीय है। यह केवल ध्वनि या शब्दों का समूह नहीं, बल्कि व्यक्तित्व, संस्कार और आत्मा की अभिव्यक्ति है। वाणी मनुष्य की सबसे बड़ी संपत्ति है। उसके माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान होता है, भावनाओं का संप्रेषण होता है और संस्कृति का संवहन संभव होता है। जिस प्रकार जल जीवन के लिए अनिवार्य है, उसी प्रकार वाणी सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन के लिए अनिवार्य है।

वाणी का प्रभाव गहन और व्यापक होता है। मधुर वाणी किसी उदास मन को प्रफुल्लित कर सकती है, किसी निराश व्यक्ति को आशा से भर सकती है और किसी क्रुद्ध को शांत कर सकती है। दूसरी ओर कटु वचन गहरे घाव छोड़ जाते हैं, संबंधों को तोड़ते हैं और मनुष्यता को कलुषित करते हैं। इसीलिए प्राचीन ऋषियों ने वाणी को तपस्या और साधना का विषय माना और उसे संयमित, मर्यादित तथा परिष्कृत करने का आग्रह किया।

सच्चाई यह है कि वाणी केवल मुख से बोले गए शब्दों तक सीमित नहीं है। यह तो मन के भाव, बुद्धि की गहराई और आत्मा की संवेदनशीलता का स्वरूप है। किसी के कहे गए शब्दों का तभी प्रभाव होता है, जब वे उसके आचरण और जीवन से मेल खाते हों। असंगति की स्थिति में वाणी निर्जीव और निष्प्राण प्रतीत होती है, पर जब जीवन और वचन में एकरूपता आ जाती है, तब वाणी मंत्रवत् प्रभाव उत्पन्न करती है।

वाणी का एक आयाम है—संयम। अनियंत्रित वाणी बारूद की चिनगारी की तरह है, जो स्वयं भी जलती है और दूसरों को भी जला देती है; जबकि संयमित वाणी शीतल चाँदनी की तरह है, जो जीवन को आलोकित कर देती है।

इसीलिए ऋषि-मुनियों ने वाणी-संयम को साधना का प्रथम सोपान माना। वाणी का दूसरा आयाम है—प्रेरणा। वाणी केवल संवाद का साधन नहीं, बल्कि मार्गदर्शन का उपकरण भी है। इतिहास गवाह है कि महापुरुषों की वाणी ने समाज की दिशा बदल दी। भगवान श्रीकृष्ण की गीता की वाणी ने अर्जुन जैसे शंकालु योद्धा को धर्मयुद्ध हेतु प्रेरित किया।

बुद्ध की वाणी ने करुणा का मार्ग प्रशस्त किया और महावीर की वाणी ने अहिंसा को मानवता का सर्वोच्च मूल्य बना दिया। वाणी का तीसरा आयाम है—सृजन और संवेदनशीलता। मधुर वाणी में संबंधों को जोड़ने और जीवन को सुंदर बनाने की अद्भुत क्षमता होती है। यह व्यक्ति-व्यक्ति के बीच सेतु का कार्य करती है।

कटु वाणी जहाँ दीवारें खड़ी करती है, वहीं सौम्य वाणी पुलों का निर्माण करती है। यही कारण है कि कहा गया है—‘मधुर वचन अमृततुल्य हैं और कटुवचन विष के समान।’ एक अन्य गहन आयाम है—साधना। साधना का अर्थ केवल मंत्र जप या पूजा-अर्चना तक सीमित नहीं, बल्कि मन, वचन और कर्म की पवित्रता में निहित है।

साधना से निकली हुई वाणी मात्र ध्वनि नहीं रहती, वह ऊर्जा और प्रेरणा का स्रोत बन जाती है।

ऐसी वाणी न केवल सुनने वालों के कानों में गूँजती है, बल्कि उनके हृदय में उतरकर जीवन का पथ प्रदर्शन करती है। वाणी के माध्यम से मनुष्य अपने संस्कारों को व्यक्त करता है।

यह केवल शाब्दिक संप्रेषण नहीं, बल्कि आंतरिक व्यक्तित्व का दर्पण है। वाणी जितनी परिष्कृत होगी, जीवन उतना ही उज्ज्वल और दिव्य होगा। वास्तव में वाणी वह साधन है, जो मनुष्य को साधारण-से-असाधारण, व्यक्तिगत से सामाजिक और सीमित से असीमित बना सकती है। यही वह पवित्रता है, जो वाणी को साधना का अमूल्य वरदान बनाती है। वाणी केवल ध्वनि नहीं, आत्मा की अभिव्यक्ति है।

यह न केवल संबंधों का निर्धारण करती है, बल्कि संस्कृतियों और सभ्यताओं की धारा को भी दिशा देती है। यह या तो जीवन को विषमय बना सकती है या अमृतमय। इसीलिए आवश्यक है कि हम वाणी के प्रत्येक प्रयोग को साधना मानकर करें। हमारी वाणी में सत्य, करुणा और मधुरता का सम्मिश्रण हो। तभी हम अपने जीवन को सार्थक बना सकेंगे और समाज को सही दिशा प्रदान कर पाएँगे। ❑

गुरु शिष्यों को उपदेश दे रहे थे। गुरु ने कहा कि परमात्मा सृष्टि के कण-कण में है। भगवान को हर स्थान पर अनुभव किया जा सकता है। उपदेश सुनकर एक शिष्य घर लौटने लगा तो उसने देखा कि एक पागल हाथी चला आ रहा है।

शिष्य ने मन-ही-मन सोचा कि गुरुदेव ने कहा है कि भगवान हर प्राणी में है तो इस हाथी में भी भगवान है। मुझे इससे डरना नहीं चाहिए, बल्कि हाथी भगवान को गले लगा लेना चाहिए। महावत ने शिष्य को मार्ग में खड़ा देखकर बहुत आगाह किया, पर शिष्य मार्ग से नहीं हटा। हाथी पास आया तो उसने उठाकर शिष्य एक तरफ फेंक दिया, शिष्य बुरी तरह से घायल हो गया।

गुरु उसे देखने घर पहुँचे तो शिष्य बोला—"गुरुजी! आप कहते थे कि भगवान हर प्राणी में है तो क्या वह इस हाथी में नहीं था? मैंने तो यह सोचकर कि इस हाथी में विद्यमान परमात्मा मेरे को प्रेमपूर्वक स्वीकार करेंगे, उस हाथी की तरफ कदम बढ़ाया था। उस हाथी ने मेरी क्यों नहीं सुनी?"

गुरु बोले—"बेटा! भगवान हर जगह विद्यमान है, यह सत्य है, पर यह तभी सत्य है, जब इसका आभास उस प्राणी को भी हो, जिसकी तरफ तुमने कदम बढ़ाए। यदि तुमने हाथीरूपी परमात्मा की आवाज सुनने का प्रयत्न किया तो उस महावत की आवाज क्यों नहीं सुनी, जो तुम्हें चिल्ला-चिल्लाकर हटने को कह रहा था। उसमें भी तो भगवान है।"

गुरु आगे समझाते हुए बोले—"भगवान कण-कण में है, ऐसा रट लेने से भगवान की उपस्थिति हर जगह अनुभव नहीं होती। वैसा करने के लिए उन्हें अंतर्मन से अनुभव करना जरूरी है, वैसा हो जाने पर प्राणिमात्र में परमात्मा दिखाई पड़ते हैं।"

परमपूज्य गुरुदेव की सकारात्मक पत्रकारिता

सकारात्मक पत्रकारिता अकादमिक रूप से 2 से 3 दशक पुरानी अवधारणा है, जिसे कन्सट्रक्टिव जर्नलिज्म या सोल्यूशन जर्नलिज्म के नाम से भी जाना जाता है। यह पत्रकारिता की समाधानपरक विधा का नाम है, जिसमें समस्याओं की ही चर्चा नहीं की जाती, बल्कि इनके संभावित समाधान पर भी प्रकाश डाला जाता है।

पॉजिटिव साइकोलॉजी की पृष्ठभूमि से उभरी पॉजिटिव जर्नलिज्म की विधा भारत में अभी अपनी प्रारंभिक अवस्था में है और इसका चलन धीरे-धीरे जोर पकड़ रहा है, हालाँकि भारत में तो समस्याओं के आत्यंतिक एवं जड़-मूल के समाधान की प्राचीनतम विधा के रूप में इसकी सनातन परंपरा रही है।

इसके सूत्रधार थे मानवीय चेतना के मर्मज्ञ ऋषिगण, वेद-उपनिषद् से लेकर सकल वाङ्मय। परमपूज्य गुरुदेव इसी परंपरा के ऋषि थे, जिन्होंने युग की वेदना को धारण कर चेतना के शिखर पर प्रतिष्ठत होकर युग के समाधान प्रस्तुत किए और युगऋषि के रूप में मान्य हुए। उनकी सकारात्मक पत्रकारिता का दायरा समग्र अस्तित्व के समान व्यापक रहा।

इस तरह व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व एवं सकल प्रकृति तथा सृष्टि उनके पत्रकारीय धर्म के दायरे में आते हैं और युग पत्रकारिता को वे एक नई दिशा दे जाते हैं। सर्वविदित है कि परमपूज्य गुरुदेव गायत्री के सिद्ध साधक, महायोगी, सद्गृहस्थ, वेद-उपनिषद् सहित आर्ष वाङ्मय के भाष्यकार, प्रखरतम विचारक, साहित्यसृजक, युगऋषि, अभूतपूर्व संगठनकर्त्ता और गायत्री परिजनों के अभिभावक, गुरु सभी कुछ थे।

80 वर्ष की आयु में जो युगांतरीय कार्य वे संपन्न कर गए, वे उन्हें प्रज्ञावतार एवं महाकाल के अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठत करते हैं। इन सबके साथ वे एक प्रखरतम पत्रकार भी थे, जिसका शुभारंभ स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन के दौरान श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी के सैनिक पत्र में एक प्रखर पत्रकार के रूप में हुआ, जहाँ श्रीराम मत्त के नाम से उनकी क्रांतिकारी रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं।

पूज्य गुरुदेव ने वर्ष 1938-40 के दौरान अखण्ड ज्योति पत्रिका का शुभारंभ किया; जिसकी मुखपृष्ठ की पंक्तियों के संदेश युग-परिवर्तन के लिए संकल्पित एक अवतारी चेतना के महती संकल्प को अभिव्यक्त कर रहे थे।

संदेश नहीं मैं स्वर्गलोक का लाई,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई।
सुधा बीज बोने से पहले कालकूट पीना होगा,
पहन मौत का मुकुट विश्वहित मानव को जीना होगा।

इन पंक्तियों में भगवान शिव की तरह पूज्यवर के लोक-कल्याण हित युग की नकारात्मकता के विषपान के भाव-संकल्प को देखा जा सकता है। पूज्य गुरुदेव की सकारात्मक पत्रकारिता की सृजनगंगा का गोमुख भी इन पंक्तियों में देखा जा सकता है।

वस्तुतः सकारात्मक पत्रकारिता एक ऋषि कर्म है, जिसे एक आत्मजयी साधक ही निभा सकता है। इस रूप में वे **'सत्यम्-शिवम्-सुंदरम्'**

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

के जीवंत विग्रह थे। उनकी पत्रकारिता में सिर्फ सकारात्मकता और समाधान के ही दर्शन होते हैं, कहीं से भी नकारात्मकता को नहीं ढूँढ़ा जा सकता।

पूज्य गुरुदेव विश्वयुद्ध के दौरान हिरोशिमा-नागासाकी में एटम बम के प्रलयंकारी विस्फोट के साथ विवेकहीन विज्ञान के ध्वंसकारी स्वरूप को देख चुके थे और विज्ञान के प्रत्यक्षवाद से उपजे भोगवादी चिंतन की सीमाएँ भी समझ चुके थे।

साथ ही वे विवेकहीन धर्म के रुढ़िवादी, अंधविश्वासी एवं प्रतिगामी स्वरूप से भी परिचित थे। अत: उन्होंने युग की इन दो महान शक्तियों के दुरुपयोग पर अंकुश की दृष्टि से एक नए जीवन दर्शन का प्रतिपादन किया, जिसकी चर्चा उन्होंने वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के रूप में जनवरी, 1947 की अखण्ड ज्योति में की। उनकी ऋषि-दृष्टि को आभास हो गया था कि देश राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होने वाला है, लेकिन वैचारिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अभी गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है।

उन्हें स्पष्ट था कि नए भारत की रचना, नए युग की परिकल्पना को साकार करने के लिए व्यक्ति निर्माण का महान कार्य पूरा करना होगा और मानसिक गुलामी से उबारना होगा। सो उन्होंने वैदिक ऋषियों की परंपरा में अपनी साधना से परिपक्व होते अध्यात्म के वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक स्वरूप का प्रतिपादन किया और इसे वैज्ञानिक अध्यात्मवाद नाम दिया, जिससे व्यक्ति जहाँ खड़ा है, वहीं से आगे बढ़ सके।

सनातन धर्मावलंबियों व आस्थावानों के लिए उन्होंने सद्बुद्धि एवं आत्मबल की अधिष्ठात्री गायत्री-साधना का आधार दिया और प्रबुद्ध, तर्कशील एवं नास्तिक लोगों को आत्मदेव की साधना के रूप में आत्मनिर्माण का नूतन दर्शन दिया। जिसका संदेश स्पष्ट था कि '**अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा है**' और '**हम बदलेंगे युग बदलेगा—हम सुधरेंगे युग सुधरेगा**' अर्थात समाज व संसार में परिवर्तन का शुभारंभ स्वयं से करना होगा।

अपनी पत्रकारिता एवं जनसंचार के माध्यमों से पूज्यवर ने इस दर्शन का प्रसार किया, जिसके आधार पर आत्मपरिष्कार, चरित्र गठन, आत्मविकास एवं व्यक्ति निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो सके और आचारनिष्ठ व्यक्तित्व के आधार पर मूल्यनिष्ठ पत्रकारिता का उदाहरण प्रस्तुत हो सके।

पूज्य गुरुदेव की सकारात्मक पत्रकारिता का दूसरा महत्त्वपूर्ण आयाम था—परिवार निर्माण, जिसे उन्होंने 'गृहस्थ एक तपोवन' की एक क्रांतिकारी अवधारणा के रूप में प्रस्तुत किया। अब तक शायद ही किसी महापुरुष या चिंतक ने इतनी मुखरता एवं स्पष्टता के साथ परिवार निर्माण के हर पक्ष पर प्रकाश डाला हो।

परमपूज्य गुरुदेव स्वयं एक आदर्श सद्गृहस्थ थे, परिवार में संस्कारों पर बल देते थे और परिवार संस्था को नररत्नों की खदान कहते थे। पूज्यवर ने इसे वैदिक धर्म की आधारशिला आश्रम-व्यवस्था का सशक्त आधार घोषित किया, जहाँ से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यासी सभी ही आश्रय पाया करते थे।

परिवार के बाद पूज्य गुरुदेव की सकारात्मक पत्रकारिता में समाज की समस्याओं के समाधान के साथ समाज निर्माण की धारा भी प्रवाहित होती दिखती है। पूज्य गुरुदेव का पत्रकारिता चिंतन जीवन से पलायन नहीं, इसकी दुष्प्रवृत्तियों एवं कुरीतियों से लोहा लेने व उनके उन्मूलन पर बल देता है और साथ ही समाज सुधार के साथ आत्मकल्याण का प्रतिपादन भी करता है।

उनकी यह उक्ति स्मरणीय है कि समाज की सच्ची सेवा करते हुए आत्मकल्याण मानव जीवन का मूल उद्देश्य है। यहाँ पूज्य गुरुदेव का यज्ञीय

भाव के साथ संपन्न कर्म का भाव प्रतिपादित होता है, जहाँ वे '**इदं न मम**' के भाव के साथ कर्म को आराधना मान निष्काम एवं निस्स्वार्थ कर्म की प्रेरणा देते हैं।

समाज निर्माण के साथ पूज्य गुरुदेव की पत्रकारिता राष्ट्र के उत्थान की बात भी करती है और राष्ट्रीय एकता व अखंडता पर बल देती है तथा जाति, लिंग, भाषा, प्रांत के आधार पर किसी भी तरह के भेदभाव को निरस्त करती है। उनकी पत्रकारिता '**वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः**' के उद्घोष के अनुरूप युगधर्म के रूप में राष्ट्र-जागरण एवं उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है और ऋषि परंपरा के पुनर्जागरण, स्थापना एवं विस्तार के साथ इसे और गहरा एवं व्यापक आयाम देती है।

सन् 1971 की हिमालय यात्रा में हिमालयवासी दादागुरु का यह निर्देश था कि शांतिकुंज की स्थापना की जाए और यहाँ से ऋषि परंपरा की पुनर्स्थापना की प्रक्रिया का शुभारंभ किया जाए, जिसका विधिवत् बीजारोपण शांतिकुंज में हुआ।

इसी के साथ राष्ट्र उत्थान के भाव से पूज्य गुरुदेव की सकारात्मक पत्रकारिता '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' के आधार पर विश्व-निर्माण की परिकल्पना को साकार करने की दिशा में अग्रसर हुई।

भारतीय संस्कृति के शाश्वत, सार्वभौम एवं वैज्ञानिक चिंतन के आधार पर उन्होंने भारतीय संस्कृति को विश्व संस्कृति के रूप में उद्घोषित किया और सन् 1968 की अखण्ड ज्योति के एक विशेषांक में एकता, समता, ममता एवं शुचिता के चार स्तंभों के आधार पर नए विश्व की परिकल्पना की और सन् 1971 में समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान के रूप में एक शोधपरक कृति के साथ भारतीय संस्कृति के विश्व संस्कृति स्वरूप को और स्पष्ट किया। साथ ही सभी सनातन धर्मावलंबियों को इसके सचेष्ट प्रसार एवं विस्तार के लिए प्रेरित भी किया।

इन सबके साथ पूज्य गुरुदेव ने प्रकृति-पर्यावरण को संस्कृति के साथ जोड़ते हुए समावेशी विकास का दर्शन भी प्रस्तुत किया। यूनेस्को के सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्ज व आधुनिक मनीषियों की डीप इकोलॉजी की अवधारणाओं के आने से पूर्व ही युगऋषि इन विषयों पर प्रकाश डाल रहे थे।

इस तरह परमपूज्य गुरुदेव के पत्रकारिता चिंतन में व्यक्ति से परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, सकल प्रकृति एवं पूरा युग समाहित होता है और सकारात्मक पत्रकारिता का सम्यक स्वरूप स्पष्ट होता है और उनके सृजनात्मक आंदोलन का स्वरूप भी अखण्ड ज्योति परिवार से गायत्री परिवार, युग निर्माण आंदोलन, प्रज्ञा अभियान एवं विचारक्रांति-अभियान के रूप में मत्स्यावतार की तरह विस्तार पाता दिखता है।

पूज्य गुरुदेव के अनुसार पत्रकारिता धर्म का निर्वाह भी समाज सेवा है और समाज सेवा के क्षेत्र में सबसे बड़ा कार्य जनमानस का परिष्कार है। नवयुग यदि आएगा तो विचार शोधन द्वारा ही। क्रांति होगी तो वह लहू और लोहे से नहीं, विचारों-से-विचारों की काट द्वारा होगी। यह कार्य पत्रकारिता के माध्यम से संभव है। इसके लिए पूज्य गुरुदेव बौद्धिक क्रांति, नैतिक क्रांति एवं समाज क्रांति के आधार विचार क्रांति का प्रतिपादन करते हैं और पत्रकारिता को इसका सशक्त माध्यम मानते हैं व इसका व्यापक उपयोग करते हैं।

समय के साथ अखण्ड ज्योति, प्रज्ञा पाक्षिक, युग निर्माण पत्रिका से लेकर ईएमडी की युग प्रवाह वीडियो पत्रिका, डिजिटल माध्यम, पोडकास्ट आदि पूज्य गुरुदेव की सकारात्मक पत्रकारिता का प्रसार करने के माध्यम बनते दिखाई पड़ते हैं।

प्रज्ञा गीत, संगीत, ढपली, भजन व प्रज्ञा पुराण कथा के पारंपरिक माध्यमों से भी इसका प्रसार हुआ। इस तरह युग निर्माण आंदोलन की शतसूत्रीय योजनाओं, युग निर्माण के 18 सत्संकल्पों और सप्त रचनात्मक आंदोलनों को गति देने के लिए भी पत्रकारिता का व्यापक प्रयोग हुआ।

वर्ष 2002 में देव संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ इसमें एक नया आयाम जुड़ा; जो पूज्य गुरुदेव की शिक्षा के साथ विद्या के समावेश के सर्वांगीण शिक्षा दर्शन को साकार कर रहा है। एक आधुनिक गुरुकुल के रूप में नई पीढ़ी को शिक्षा के साथ संस्कार दिए जा रहे हैं और अपने ध्येय वाक्य '**सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा**' और '**वैश्विक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पुनर्जागरण**' के अनुरूप कार्य यहाँ चल रहे हैं, जहाँ अपने विषयों में निष्णात छात्र-छात्राओं के साथ उन्हें संस्कृतिदूत एवं सकारात्मकता के संवाहक अग्रदूतों के रूप में भी गढ़ा जा रहा है।

पूज्य गुरुदेव की सकारात्मक पत्रकारिता में अकादमिक स्तर पर शोध व शिक्षण की प्रक्रिया भी चल रही है, जहाँ आध्यात्मिक पत्रकारिता, सकारात्मक पत्रकारिता, आध्यात्मिक संचार, संचार की भारतीय प्रणालियों पर कार्य चल रहा है। यहाँ से तैयार हो रहे पत्रकारिता के विद्यार्थी, प्रोफेशनल एवं अकादमिक क्षेत्रों में पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रवर्तित सकारात्मक पत्रकारिता के संवाहक के रूप में अपने-अपने स्तर पर समाज निर्माण एवं राष्ट्र-उत्थान के कार्य में अपना योगदान दे रहे हैं। ☐

एथेंस के प्रसिद्ध शिक्षक जीनो के विद्यालय में किलेंथस नामक विद्यार्थी पढ़ा करता था। पढ़ने में कुशाग्र था, परंतु अत्यंत गरीब था। उससे ईर्ष्या करने वाले विद्यार्थियों ने उसकी झूठी शिकायत नगर के अधिकारियों तक पहुँचा दी कि किलेंथस चोरी करके पढ़ाई की फीस जमा करता है। नगर के न्यायाधीश ने किलेंथस को उसकी सफाई देने बुलाया। किलेंथस ने अपने पक्ष के समर्थन में गवाह प्रस्तुत किए। पहला गवाह नगर का माली था।

वह बोला—"यह बालक रोज कुएँ से पानी भरकर मेरे बाग में छोड़कर आता है, मैं उसके बदले की मजदूरी इसे देता हूँ।" दूसरी गवाह एक बूढ़ी औरत थी। वह बोली—"यह बालक रोज मेरे लिए आटा पीसकर छोड़ जाता है। उसके बदले का धन इसे मैं देती हूँ।" न्यायाधीश किलेंथस की परिश्रमशीलता और अध्ययन के प्रति समर्पण से अत्यंत प्रभावित हुए। उन्होंने उसका सारा शिक्षण शुल्क माफ करा दिया। यही बालक किलेंथस आगे चलकर यूनान का शासक बना।

मृत्यु भी उत्सव बने

न्यूयॉर्क (अमेरिका) की एक वृद्ध महिला ड्राइवर का जीवन ऐसे समाप्त हुआ, मानो वह एक उत्सव हो। उम्र अपनी चरम सीमा पर थी, पर जीवन से कोई शिकायत नहीं, कोई बीमारी नहीं, कोई दरद नहीं। बस, एक दिन, हँसते-हँसते, शांत भाव से, उसने अपने जीवन का पटाक्षेप कर दिया।

यह केवल चिकित्सा जगत् के लिए ही नहीं, बल्कि समूचे समाज के लिए एक अद्‌भुत और प्रेरणादायक घटना थी। कल्पना कीजिए—न कोई रोग, न दवा, न पीड़ा। वह अपने बच्चों के साथ बैठी, पुराने गीत गा रही थी। अचानक उसने मुस्कराकर कहा—"अब मैं चलने की तैयारी कर रही हूँ।"

बच्चों ने हँसते हुए पूछा—"कहाँ जा रही हो?" वह शांत स्वर में बोली—"वहाँ, जहाँ से कोई लौटकर नहीं आता।" उस क्षण में न कोई भय था, न उदासी बस, स्वीकृति और शांति। धार्मिक दृष्टि और आध्यात्मिक संस्कारों से देखा जाए तो यही मृत्यु का सबसे सुंदर और स्वस्थ स्वरूप है, जहाँ अंत एक उत्सव बन जाए।

यहाँ मृत्यु कोई त्रासदी नहीं, बल्कि एक पूर्ण विराम है, जो जीवन की सारी कहानी को संपूर्ण बना देता है। इस महिला ने समय से पहले जाने की कोई जल्दबाजी नहीं की। बस, जैसे ही उसने भीतर महसूस किया कि उसकी यात्रा पूर्ण हो चुकी है, उसने मुस्कराकर, बिना किसी मोह या डर के अपने प्रस्थान को स्वीकार कर लिया। उसके भीतर जीवन के प्रति आभार और मृत्यु के प्रति श्रद्धा दोनों साथ-साथ थे।

अक्सर लोग मृत्यु का नाम सुनते ही डर जाते हैं, उसे अशुभ मानते हैं, पर यह केवल अज्ञान और मोह की देन है। जब हम मृत्यु को सहज भाव से जीवन के स्वाभाविक अंत के रूप में स्वीकार करते हैं, तब यह एक पवित्र, शांत और गरिमामय अनुभव बन जाती है—कुछ वैसा ही, जैसा इस वृद्धा ने कर दिखाया। ❑

संग्राम में देवताओं को अनेकों बार पराजय का मुँह देखना पड़ा। मात्र परमात्मा की अनुकंपा से ही उन्हें, उनका सिंहासन मिल पाया तो देवराज इंद्र ने देवगुरु बृहस्पति से ऐसा होने के पीछे का कारण पूछा।

देवगुरु ने उत्तर दिया—"ऐश्वर्य, पुण्य की पूँजी पर मिलता है। उसकी सुरक्षा संयम के आधार पर होती है। जो वैभव प्राप्त कर उन्मादी हो जाते हैं, उन्हें पराजय का मुख देखना पड़ता है। यदि तुम अपनी पुण्य की ऊर्जा वैभव-विलास में लगाओगे तो पराजय का सामना बार-बार करना ही पड़ेगा।"

सामाजिक समरसता का आदर्श

सामाजिक समरसता का आदर्श हमारी संस्कृति के सार्वभौमिक मूल्यों का आधार है। इससे संपूर्ण मानवता के अभ्युदय और कल्याण का मार्ग निकलता है।

वर्तमान में इस महान आदर्श की आवश्यकता भारत ही नहीं, अपितु समस्त विश्व मानवता को सर्वाधिक दिखाई पड़ती है। व्यक्तिगत जीवन हो, सामाजिक हो अथवा सार्वजनिक—सभी स्तरों पर विभेद की रेखा स्पष्ट दिखाई दे जाती है।

जाति, वर्ण, धर्म, वर्ग, भाषा और संस्कृति को लेकर आएदिन द्वेष, वैमनस्य, हिंसा, अशांति की स्थिति से सभी प्रत्यक्ष होते हैं। साधन-संसाधन, तकनीकी और आधुनिक भोगवादी विकास की दौड़ में भागती दुनिया अपने सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को पीछे छोड़ चुकी है।

स्वार्थ, संकीर्णता, असम्मान, दुर्भावना, घृणा, निंदा, हिंसा, असहिष्णुता, वर्चस्ववाद जैसी अनेक बाधाओं ने मानवीय जीवन के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के स्वरूप को विद्रूप बना डाला है। सुख, शांति, स्नेह, सहयोग-सम्मान, त्याग, सेवा जैसे जीवनमूल्य खोज पाना मुश्किल है। ऐसे में सामाजिक समरसता का संदेश अत्यंत उपयुक्त और प्रासंगिक है।

यह हमारे ऋषियों की मंत्रणा से निस्सृत भारतीय जीवनपद्धति का परम आदर्श है। सामाजिक समरसता के प्रथम स्वर हमारी जीवनपद्धति का परम आदर्श हैं। सामाजिक समरसता के स्वर ऋषि वाणी में वैदिक समाज में ही गुंजायमान हुए हैं। ऋग्वेद संहिता का संपूर्ण सौमनस्य सूक्त समानता-समरसता का ही उद्घोष है।

समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

—ऋग्वेद-10/191/4

अर्थात ऋषि उपदेश है कि सबका हृदय समान हो, मन समान हो, किसी प्रकार का पारस्परिक वैमनस्य, भेद न हो। ऋषि-वाणी में सभी को समरसता के साथ प्रीतिपूर्वक रहने का दिव्य संदेश है।

ऋषि कहते हैं—यह संसार सागर अत्यंत दुर्गम है। परस्पर साथ मिलकर स्नेहपूर्वक जीवन-यापन करने में ही सबका उत्थान निश्चित है। नीतिपूर्वक आचरण करते हुए मित्र बनकर एकदूसरे का सहयोग करते हुए जीवन के बहुविध सुखों का लाभ करो (**अश्मन्वती रीयते सं वीरयध्वं प्र तरता सखायः, अत्रा जहीत ये असन्दुरेवा अन्मीवानुत्तरेमाभि वा जान।**)। इन ऋषिमंत्रों में हमारे जीवन में प्रेम, एकता, समानता और सह-अस्तित्व की कल्याणकारी भावनाएँ समाहित हैं।

इन्हीं भावनाओं को आत्मसात् कर समूचे विश्व को **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** एवं **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** जैसे महान आदर्शों का संदेश प्रसारित हुआ है। संपूर्ण पृथ्वी को माता और संपूर्ण प्राणी मात्र को एक ही परमात्मा की संतान मानने वाली महान संस्कृति के हम उत्तराधिकारी बन पाए हैं। सामाजिक समरसता के इतने उदार, स्पष्ट और मुखर स्वर हमारी विरासत हैं।

इन स्वरों ने ही समाज को समुन्नत बनाने वाले जीवन चरित्रों का प्रत्येक युग में निर्माण किया है। जीवन चरित्र का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण वर्णाश्रम व्यवस्था के रूप में समझा जा सकता है।

सामाजिक जीवन में गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार वर्ण संकल्पना की गई, जिसमें सभी एकदूसरे के पूरक और सहयोगी बन सर्वांगीण विकास को प्राप्त करते हैं। आश्रम-व्यवस्था में समाज में चरम विकास और कल्याण के लिए व्यक्तिगत जीवन का निर्धारण किया गया है।

सामाजिक समरसता के इतने सुंदर उदाहरण अन्यत्र किसी सभ्यता-संस्कृति में दिखाई नहीं पड़ते हैं। इतिहास साक्षी है कि सामाजिक समरसता-समानता और एकता की इतनी गहन, सूक्ष्म और व्यापक दृष्टि का लाभ केवल भारतीय समाज को ही नहीं मिला है, अपितु जो भी इसके संपर्क में आया, उन सभी मानवीय सभ्यताओं ने इस अनुपम जीवन-दृष्टि और आदर्शों का लाभ प्राप्त किया है।

मध्य एशिया का क्षेत्र तो भारतीय सामाजिक आदर्शों से ओत-प्रोत साक्ष्यों को सँजोए हुए है ही, साथ ही यूरोप से लेकर अन्य संस्कृति-समाज में भी न्यूनाधिक रूप में इसके चिह्न प्राप्त हो जाते हैं।

सार्वभौमिक और सामाजिक जीवन के आदर्शों को समझने के लिए भारतीय संस्कृति के सनातन सिद्धांतों के अतिरिक्त दूसरा कोई विकल्प खोजने की आवश्यकता नहीं है।

वेद, उपनिषद, साहित्य से लेकर आधुनिक ग्रंथों में इसकी विशद विवेचना है। सामाजिक समरसता के आदर्श को चरितार्थ बनाने में व्यापक प्रेरणाएँ एवं समर्थ मार्गदर्शन प्रत्येक के लिए यहाँ सर्वसुलभ हैं।

विश्व समाज अब अत्यंत निकटता से जीवनयापन करने लगा है। वैश्विक परिवार की तरह अब संपूर्ण मानव जीवन और समाज के लिए ये सामाजिक समरसता के दिव्य सूत्र और उदात्त भावनाएँ वरेण्य हैं।

इन्हीं से मौजूदा विषमताओं का समुचित समाधान और कल्याणकारी व उज्ज्वल भविष्य का मार्ग प्रशस्त होगा, ऐसा सुनिश्चित विश्वास और शुभकामनाएँ हैं। □

पुराणों में कथा आती है कि एक बार शिवलोक में भगवान शिव, नंदी के साथ बैठे हुए थे कि एक भीषण शब्द सुनाई पड़ा। नंदी ने पूछा—"भगवान! यह कैसी आवाज है?" भगवान शिव ने उत्तर दिया—"रावण पैदा हुआ है। यह उसी की ध्वनि है।" कुछ क्षण बीते कि पुनः वैसा ही भीषण शब्द सुनाई पड़ा तो नंदी ने पुनः भगवान शिव से उस ध्वनि का कारण पूछा। इस बार भगवान बोले—"नंदी! यह रावण के मरने की ध्वनि है।"

कथा के सूत्रकार कहते हैं कि भगवान के इस लीलामय जगत् में जन्म और मृत्यु, जल में उत्पन्न बुलबुलों के समान हैं। जब तक मनुष्य को यह भान होता है कि यह समस्त संसार, उन्हीं की लीला है—तब तक चलने का समय आ जाता है, परंतु प्रभु के लिए ये समस्त घटनाएँ, पलक झपकने के समान ही होती हैं।

शक्तियाँ — विध्वंसक न हों लोक-मंगलकारी हों

इतिहास गवाह है कि अनेक बार शस्त्र-सज्जित और संख्याबल से संपन्न सेनाएँ भी हार गईं; क्योंकि उनमें अनुशासन और संयम का अभाव था। शक्ति का अर्थ केवल हथियारों या संसाधनों की प्रचुरता नहीं है। यदि उसका प्रयोग विवेकपूर्ण दिशा में न हो तो वही शक्ति विनाश का कारण बन जाती है।

प्रकृति स्वयं हमें यह शिक्षा देती है। अग्नि, वायु और जल जैसी शक्तियाँ तभी कल्याणकारी सिद्ध होती हैं, जब वे संतुलित हों, लेकिन जब उनका संतुलन बिगड़ता है तो वही तत्त्व बाढ़, तूफान और अग्निकांड जैसी आपदाओं को जन्म देते हैं। यही नियम मानव जीवन और समाज पर भी लागू होता है। भारत की आध्यात्मिक परंपरा ने शक्ति के इस स्वरूप को गहराई से समझा।

यहाँ शक्ति की उपासना मातृरूप में की गई। यह प्रतीक है कि शक्ति का उद्देश्य संरक्षण, पोषण और सृजन होना चाहिए न कि विध्वंस। देवी-देवताओं के रूप में शक्ति की आराधना यही संदेश देती है कि बल का यही प्रयोग सदैव लोक-मंगल के लिए होना चाहिए।

आज के समय में यह प्रश्न और भी प्रासंगिक हो उठा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने हमें अपार शक्तियाँ प्रदान की हैं, परंतु यदि उनका प्रयोग आत्मसंयम, नैतिकता और करुणा के साथ न हुआ तो यही उपलब्धियाँ मानव सभ्यता को नष्ट कर सकती हैं। परमाणु अस्त्र, जैविक हथियार और तकनीकी दुरुपयोग इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।

इतिहास में तालाबुर्जियों का उदाहरण इस सत्य को और अधिक स्पष्ट कर देता है। जब-जब ये विशालकाय जलाशय टूटे, तो चारों ओर भारी तबाही मच गई। 1826 ई० में म्यांमार के एक बाँध के टूटने से 160 वर्गमील-क्षेत्र जलमग्न हो गया और हजारों लोग काल के गाल में समा गए। सन् 1928 में अमेरिका के सेंट फ्रांसिस बाँध के टूटने से 600 से अधिक लोग मारे गए। इसी प्रकार जापान, चीन और यूरोप में भी समय-समय पर बाँधों के टूटने से भीषण विनाश हुआ है।

इन घटनाओं से यही शिक्षा मिलती है कि यदि शक्ति का संतुलन न रहे तो उसका परिणाम विध्वंस ही होता है। तालाबुर्जियाँ टूटती हैं तो उनके आस-पास की उपजाऊ भूमि और बस्तियाँ सब बह जाती हैं। खेत-खलिहान, घर-गृहस्थी, सड़कें और पुल नष्ट हो जाते हैं। ठीक यही दशा उस शक्ति की होती है, जो विवेक और अनुशासन के बिना प्रयुक्त होती है। शक्ति यदि नियंत्रित और मर्यादित रहे तो जीवनदायिनी है, किंतु अनियंत्रित हो जाए तो संहारिणी बन जाती है।

पृथ्वी के गर्भ में छिपी अग्नि भी यदि संतुलित रहे तो जीवन के लिए ऊष्मा प्रदान करती है, पर जब वह फूटती है तो ज्वालामुखी बनकर चारों ओर विध्वंस फैलाती है। यही स्थिति आज की सभ्यता की भी है। यदि विज्ञान और तकनीक से प्राप्त सामर्थ्य का सदुपयोग संयमित न हुआ तो यह ज्वालामुखी की तरह मानवता को डरा देने वाला विनाशकारी परिणाम उत्पन्न करेगा।

सच्ची शक्ति वही है, जो अनुशासन और संयम से जुड़ी हो, जिसमें लोक-कल्याण की भावना और करुणा का प्रकाश हो अन्यथा यह तालाबुर्जियों

और ज्वालामुखियों की तरह सब कुछ नष्ट कर डालती है और अंततः स्वयं को भी समाप्त कर देती है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम शक्ति को न केवल संचित करें, बल्कि उसके सदुपयोग की दिशा और उद्देश्य भी स्पष्ट करें। तभी शक्ति का वास्तविक स्वरूप लोक-मंगलकारी बन पाएगा और मानवता को सुरक्षित भविष्य प्रदान कर सकेगा। □

आवश्यक सूचना

1. कोई भी संदेश (फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप) व्यक्तिगत न भेजें, न कोई धनराशि व्यक्तिगत भेजें। व्यक्तिगत संदेश एवं भेजी गई धनराशि पर कार्यवाई करना संभव न होगा। केवल संस्थागत फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप पर ही संदेश एवं राशि भेजें।
2. सभी पत्र व्यवहार, ई-मेल, व्हाट्सएप संदेश में अपना पूरा नाम, पता, पिनकोड, मेल आई.डी., मोबाइल नंबर, व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें, ताकि त्वरित कार्यवाई की जा सके।
3. अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि पर्याप्त दूरी पर हैं। अतः संदेश अलग-अलग पतों पर ही भेजें। संयुक्त संदेश, धनराशि भेजने से कार्यवाई में विलंब होता है।
4. राशि भेजने के पश्चात जमापर्ची के साथ पूरा संदेश भेजें, ताकि समायोजन हो सके।
5. अब रजिस्टर्ड सेवा डाक विभाग द्वारा बंद कर दी गई है। जब भी अखण्ड ज्योति न पहुँचे, तुरंत सूचित करें। दोबारा भिजवाने की व्यवस्था की जाएगी।

पता—अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा (उ.प्र.), 281 003

फोन—(0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449, मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039, व्हाट्सएप नं. 9927086290,

Email-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	**Akhand Jyoti Sansthan**	**I.F.S. Code**	**Account No.**
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—203

भावनात्मक बुद्धिमत्ता पर शोध

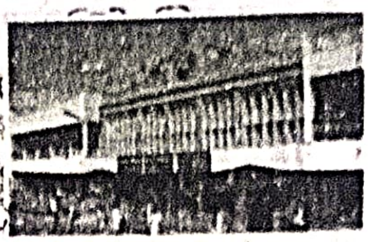

भावनाएँ मानवीय व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भावनाएँ ही व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य और शारीरिक अभिव्यक्तियों का मूल आधार हैं। यदि भावनाओं के स्तर पर जीवन में कोई न्यूनता या समस्या रहती है तो उसका प्रभाव संपूर्ण व्यक्तित्व पर पड़ता है।

समुचित रूप से विकसित एवं संतुलित भावनाओं में प्रेम, स्नेह, प्रसन्नता, संतुष्टि, शांति, सहिष्णुता, सामंजस्य जैसे गुण दिखाई देते हैं; जबकि भावनात्मक पक्ष के कमजोर रह जाने पर दुःख, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, कुंठा, आत्महीनता, भय, असहनशीलता, कुसमायोजन, असंतुष्टि, अशांति जैसी सैकड़ों विकृतियाँ जीवन में घर कर जाती हैं। अतः भावनाओं का विकास, संतुलन और नियंत्रण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

ऐसे में स्वयं की व अन्यों की भावनाओं की समझ व संतुलन की क्षमता स्वस्थ और सफल जीवन के लिए आवश्यक है। मनोविज्ञान की भाषा में इसे भावनात्मक बुद्धिमत्ता के रूप में समझाया गया है। भावनात्मक बुद्धिमत्ता का तात्पर्य है—स्वयं व सामने वालों की भावनाओं की समझ, उन पर नियंत्रण और भावनाओं का सकारात्मक प्रबंधन व उपयोग।

यह क्षमता ही व्यक्तिगत, सामाजिक व सार्वजनिक जीवन की चुनौतियों का सामना करने व उन पर विजय प्राप्त कर सही दिशा में आगे बढ़ पाने की सामर्थ्य प्रदान करती है। स्वयं के भीतर सजगता, स्वप्रेरणा, आत्मसंयम, सहानुभूति और समायोजन की क्षमता जैसी विशेषताएँ भावनात्मक बुद्धिमत्ता के महत्त्वपूर्ण पक्ष कहे जाते हैं।

विशेषज्ञों की मान्यता में विद्यार्थी जीवन की सफलता के लिए भी भावनात्मक बुद्धिमत्ता अत्यंत आवश्यक है। विद्यार्थियों की सीखने की क्षमता, शैक्षणिक उपलब्धि, सामाजिक समायोजन एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह क्षमता महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहती है।

इस दिशा में देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार में एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य किया गया है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यही है कि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन को उन्नत बनाने में भावनात्मक बुद्धिमत्ता अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। यह विशिष्ट शोध अध्ययन वर्ष-2022 में शोधार्थी अर्चना कुमारी द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० कामता प्रसाद साहू के निर्देशन में योग विज्ञान एवं मानव चेतना विभाग के अंतर्गत संपन्न किया गया है।

इस शोध विषय का शीर्षक है—**'अ स्टडी ऑफ दि इफेक्ट ऑफ यौगिक इन्टरवेन्सन ऑन इमोशनल इन्टेलिजेन्स अमन्ग कॉलेज गोइंग स्टुडेन्ट्स।'** इस प्रयोगात्मक एवं विवेचनात्मक शोध में योग-मनोविज्ञान की अवधारणा को आधार बनाकर शोधार्थी द्वारा कॉलेज स्तर के विद्यार्थियों में भावनात्मक बुद्धिमत्ता के विभिन्न पहलुओं पर यौगिक क्रियाओं के पड़ने वाले प्रभावों को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

इस शोध के प्रयोगात्मक कार्य को संपन्न करने के लिए शोधार्थी द्वारा झारखंड राज्य के राँची विश्वविद्यालय से संबद्ध रामलखन महाविद्यालय से यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा 200 विद्यार्थियों को चयनित किया गया।

महिला-पुरुष का अनुपात समान रखते हुए ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र तथा कला, वाणिज्य और विज्ञान विद्या के विद्यार्थियों को सम्मिलित कर तुलनात्मक रूप से समान संख्या समूह में वर्गीकृत किया गया। प्रयोग आरंभ करने से पूर्व शोध-उपकरणों की सहायता से सभी चयनितों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। परीक्षण के लिए जिस शोध-उपकरण को प्रयुक्त किया गया, वह है अनुकूल हाइडे, संजोत पेठे एवं उपिंदर धर द्वारा विकसित इमोशनल इन्टेलिजेन्स स्केल।

परीक्षण के उपरांत शोधार्थी द्वारा तीन माह की अवधि तक नियमित 55 मिनट का यौगिक प्रक्रियाओं का अभ्यास कराया गया। अभ्यास का समय प्रातः 6 से 7 बजे का रखा गया, ताकि विद्यार्थियों की शैक्षणिक व अन्य महत्त्वपूर्ण गतिविधियों में किसी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न न हो। यौगिक प्रक्रियाओं के अभ्यास हेतु जिन विशिष्ट योग-साधनाओं को सम्मिलित किया गया वे हैं—

(1) प्रार्थना—एक मिनट,

(2) वार्म-अप—पाँच मिनट,

(3) आसन (प्रज्ञायोग)—बीस मिनट,

(4) शवासन—तीन मिनट,

(5) नाड़ीशोधन एवं भ्रामरी प्राणायाम—दस मिनट,

(6) ओम् उच्चारण—पाँच मिनट,

(7) सविता ध्यान—दस मिनट,

(8) शांतिपाठ—एक मिनट।

इस प्रकार कुल 55 मिनट का योगाभ्यास शोधार्थी द्वारा शोध की उपचार-प्रक्रिया के अंतर्गत संपन्न कराया गया। शोध प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर पूर्व की भाँति पुनः सभी चयनित विद्यार्थियों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध-परिणाम के रूप में यह पाया गया कि चयनित योगाभ्यास का विद्यार्थियों की भावनात्मक बुद्धिमत्ता के सभी मुख्य पहलुओं पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इस शोध में प्रयुक्त यौगिक प्रक्रियाओं की भावनात्मक बुद्धिमत्ता के विकास में सार्थक उपयोगिता है। उक्त शोध-परिणामों की सार्थकता का मुख्य कारण शोध हेतु चयनित विशिष्ट योगाभ्यास की साधनाएँ हैं।

वस्तुतः योग संपूर्ण जीवन में लाभ पहुँचाता है, जैसे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। चूँकि आधुनिक युग में योग जीवन जीने की कला के रूप में प्रतिष्ठित हो रहा है, इसके साथ ही स्वास्थ्य संरक्षण एवं उपचार में भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकार्य है। ऐसे में व्यक्ति के भावनात्मक पक्ष को संतुलित और विकसित बनाने में निस्संदेह यह एक कारगर उपाय हो सकता है।

यह शोध इसी उपाय को प्रामाणिक रूप से लेकर प्रस्तुत होता है। इसमें सम्मिलित योग की समस्त तकनीकें विशिष्ट हैं और योग-साधना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। जैसे प्रार्थना व्यक्ति की भावनाओं को शुद्ध और सहज करने तथा आंतरिक शक्ति प्रदान करने का सर्वाधिक सरल एवं प्रभावी उपाय है। वार्म-अप शरीर के प्राण संरक्षण को संतुलित कर आसन, प्राणायाम आदि के अभ्यास हेतु शरीर को लचीला बनाता है।

प्रज्ञायोग व्यायाम तो स्वयं में एक संपूर्ण योगाभ्यास है, जिसमें आसन, प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान, मंत्र आदि विशेष तकनीकें सम्मिलित हैं। इसके 16 आसनों का प्रभाव संपूर्ण व्यक्तित्व पर समान रूप से पड़ता है। यह विद्यार्थियों के मन के तनाव एवं अशांति को दूर कर मन, शरीर एवं आत्मतत्त्व को जाग्रत व सजग बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आसनों के पश्चात शवासन भी शरीर-मन को विश्रांति प्रदान कर सजगता एवं शांति का अनुभव प्रदान करता है। प्राणायाम श्वास-प्रश्वास की एक महत्त्वपूर्ण योग तकनीक है, जो क्रोध, तनाव, चिंता आदि को दूर कर शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि करती है।

इस अध्ययन में नाड़ीशोधन एवं भ्रामरी प्राणायाम को प्रयुक्त किया गया है। प्रयोग में सम्मिलित ओम्-उच्चारण की तकनीक भी मन को शांत और स्थिर बनाने वाली एक प्रभावी योग-प्रक्रिया है। इसके नियमित अभ्यास से स्मृति, एकाग्रता, इच्छाशक्ति, भावनात्मक स्थिरता, निष्ठा, सकारात्मक भावनाएँ आदि विकसित होती हैं।

इसी प्रकार सविता ध्यान की तकनीक आंतरिक शांति, भावनात्मक संतुष्टि, भावनात्मक शुद्धता, मानसिक स्थिरता आदि बढ़ाने में अत्यंत कारगर सिद्ध होती है। इसका नियमित अभ्यास जीवन-ऊर्जा और जीवनीशक्ति प्रदान करता है। अंत में शांतिपाठ की प्रार्थना एक सकारात्मक भावना को उत्पन्न कर मन में शांति, विश्वास और शक्ति प्रदान करती है।

इस प्रकार यह संपूर्ण योगाभ्यास सम्मिलित रूप से व्यक्तित्व के प्रत्येक आयाम को परिष्कृत और विकसित बनाने में समर्थ है। इस अध्ययन के उद्देश्य में जिस समस्या के समाधान हेतु शोधार्थी द्वारा यह प्रयुक्त किया गया है, उस समस्या का सार्थक एवं समुचित समाधान तो इस योगाभ्यास से प्राप्त होता ही है, साथ ही स्वाभाविक रूप से जीवन की अनेक अंतः-बाह्य समस्याओं का समाधान व क्षमताओं के विकास का अनुदान भी अभ्यासी को प्राप्त होता है।

विद्यार्थियों के सर्वांगीण व्यक्तित्व-विकास के लिए इसे सर्वाधिक उपयुक्त एवं कारगर उपाय कहा जा सकता है। ❑

ध्यान में निमग्न ऋषि के अंतर्मन में जिज्ञासा उठी कि आस्तिकता का क्या अर्थ है? आकाशवाणी हुई और उसी ने उनके अंतर में जगी जिज्ञासा का निराकरण किया—आस्तिकता का अर्थ, ईश्वर के नियम-अनुशासनों में दृढ़ विश्वास से है। आस्तिक व्यक्ति जानते हैं कि स्वकृत कर्म ही परितोष या दंड का कारण बनते हैं। शुभ कर्म करने पर देर से ही सही, उसकी अच्छी प्रतिक्रिया लौटकर आती है तो वहीं दुष्कर्म करने वाले भले से तात्कालिक सुख लूटते प्रतीत हों, उन्हें उनके द्वारा किए गए कुकर्मों का दंड अवश्य भुगतना पड़ता है। इस कर्मफल के सिद्धांत पर विश्वास रखते हुए सदा ईश्वरनिष्ठ कर्म करने वाले ही आस्तिक कहलाते हैं। ऋषि की जिज्ञासा का निराकरण प्रभुप्रदत्त प्रेरणा से हो गया।

जहाँ इच्छा हो आधार, वो हैं राजसिक कर्म

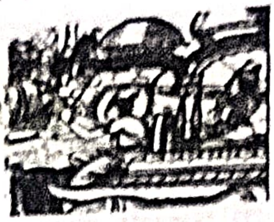

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की चौबीसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के तेईसवें श्लोक की व्याख्या विगत किस्त में की गई थी। भगवान श्रीकृष्ण इस श्लोक में अर्जुन से कहते हैं कि जो कर्म शास्त्रोक्त विधि से नियत किया गया हो और कर्त्तापन के अभिमान से रहित हो तथा फल न चाहने वाले मनुष्य द्वारा बिना राग-द्वेष के किया गया हो—वह सात्त्विक कहा जाता है। यहाँ श्रीभगवान ने नियत शब्द का प्रयोग किया है; क्योंकि नियत का अर्थ है कि वह कर्म उसी व्यक्ति के द्वारा किया जाना समीचीन है। दूसरे शब्दों में कहें तो जिस व्यक्ति के लिए शास्त्रों ने परिस्थिति अनुसार जो भी कहा है—वो करना नियत है। इसी के साथ वे ये भी कहते हैं कि ये नियत कर्म, सात्त्विक कर्म कहलाते हैं यदि उन्हें निरभिमानता के साथ किया जाए। जब कर्म, फलेच्छा से रहित हों एवं बिना राग-द्वेष के हों तो वे सात्त्विक कहलाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता की मूल पुकार ही निष्काम कर्मयोग की पुकार है अर्थात जिसमें कर्म करने का अभिमान न हो और फल पाने की इच्छा न हो। ऐसे ही कर्म को भगवान श्रीकृष्ण सात्त्विक कर्म कहकर पुकारते हैं।

इसी के साथ श्रीभगवान ये भी कहते हैं कि ऐसे कर्म राग-द्वेष से रहित हों तभी वो सात्त्विक कर्म कहलाएँगे। सुखानुभव की स्मृतिपूर्वक सुख या सुख देने वाले पदार्थ के प्रति जो लोभ या लोलुपता होती है, वह राग है और दुःखानुभव की स्मृतिपूर्वक दुःख या दुःख देने वाले साधनों के प्रति जो प्रतिहिंसा होती है, वह द्वेष है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्म करने के अभिमान से रहित, फल पाने की इच्छा से रहित, लोलुपता और द्वेष से रहित जो कर्म हैं, वे ही सात्त्विक कर्म हैं और उनको करने के अतिरिक्त कर्मबंधन से मुक्ति का अन्य कोई उपाय नहीं है।]

इसके बाद भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि—

यत्तु कामेप्सुना कर्म, साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं, तद्राजसमुदाहृतम्॥ 24॥

शब्दविग्रह—यत्, तु, कामेप्सुना, कर्म, साहङ्कारेण, वा, पुनः, क्रियते, बहुलायासम्, तत्, राजसम्, उदाहृतम्।

शब्दार्थ—परंतु (**तु**), जो (**यत्**), कर्म (**कर्म**), बहुत परिश्रम से युक्त होता है (**बहुलायासम्**), तथा (**पुनः**), भोगों को चाहने वाले पुरुष द्वारा (**कामेप्सुना**), या (**वा**), अहंकारयुक्त पुरुष द्वारा (**साहङ्कारेण**), किया जाता है (**क्रियते**), वह कर्म (**तत्**), राजस (**राजसम्**), कहा गया है (**उदाहृतम्**)।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

अर्थात जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त होता है तथा भोगों को चाहने वाले पुरुष या अहंकारी पुरुष द्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है।

यहाँ भगवान कृष्ण कहते हैं कि **'यत्तु कामेप्सुना कर्म'**—अर्थात जब कर्म करने का आधार यह हो कि ये करने के बदले में हमें पदार्थ मिलेंगे, ऐश्वर्य मिलेगा, आदर-सम्मान-प्रतिष्ठा मिलेगी, जब ऐसे भाव से कर्म किया जाता है तो, वह कर्म राजसिक कर्म कहलाता है।

इसी के साथ ही भगवान शब्द प्रयोग करते हैं कि **'साहंकारेण'** जिस कर्म को करने के पीछे अभिमान का, अहंकार की पूर्ति का भाव हो, वह कर्म उसमें निहित आकांक्षा के कारण राजसिक कर्म बन जाता है।

यहाँ भगवान के कथन का उद्‌देश्य स्पष्ट है कि क्या किया गया, उससे ज्यादा महत्त्व इस बात का है कि किस भाव से किया गया? यदि भाव विकृत है तो चाहे वो कर्म दिखने में सात्त्विक क्यों न दिखाई पड़ता हो, परिणाम में राजसिक परिणाम ही लाता है।

ये ही कारण है कि जब रावण यज्ञ करने बैठा तो उस यज्ञ का विध्वंस करने स्वयं भगवान हनुमान को जाना पड़ा; जबकि यज्ञ तो एक सात्त्विक कर्म है।

ऐसा करने के पीछे ये ही कारण था कि यज्ञ, सात्त्विक है, परंतु रावण के राजसी, राक्षसी भाव के कारण उसका स्वरूप ऐसा हो गया था कि उसे नष्ट करना अनिवार्य हो गया था। कुछ ऐसा ही परिणाम दक्ष के यज्ञ का भी हुआ और कर्ण के दान का भी हुआ; क्योंकि बाहरी दृष्टि से सात्त्विक दिखते हुए भी इनकी अंतर्निहित भावना ने इनके परिणाम को अशुभ कर दिया, राजसिक कर दिया।

ये कहने के साथ ही भगवान कृष्ण कहते हैं कि **'वा पुनः'**—अर्थात भविष्य में मिलने वाले फल को लेकर कर्म किया जाए या वर्तमान में अहंकारपूर्वक कर्म किया जाए—इन दोनों में से कोई-सा भी एक भाव यदि कर्म करने का आधार बन जाए तो वह कर्म राजसिक हो जाता है। फलेच्छा कारण हो अथवा अहंकार, दोनों में से कोई-सा भी भाव, कर्म करने का आधार बने, वह कार्य राजसी होगा, यही स्पष्ट करने की दृष्टि से श्रीभगवान यहाँ **'वा पुनः'** कहकर पुकारते हैं।

इसके साथ ही भगवान कृष्ण कहते हैं कि जिस कर्म को बहुत परिश्रम से किया जाए- **'क्रियते बहुलायासम्'** वो कर्म भी राजसिक होता है। ये कहने का अर्थ यह है कि कर्म को सामान्य परिश्रम से, संतुलन व साम्यता से न करते हुए यदि व्यक्ति सुख-भोग संग्रह के भाव से एवं अत्यधिक जोर-जबरदस्ती से करता है तो वो कर्म भी राजसिक कहलाता है।

आत्मनिरीक्षण और आत्मनिर्माण ही सबसे बड़े पुरुषार्थ हैं। साधना न तो परावलंबन है और न ही याचना। उसे आत्मपरिष्कार का सुनियोजित आधार ही माना गया है।

रजोगुण की प्रवृत्ति ही ऐसी है, जो भौतिक इच्छाओं और इंद्रिय सुखों का अधिकाधिक उपभोग करने की आकांक्षा व्यक्ति के मन में पैदा करती है। इसीलिए रजोगुण के प्रभाव में किया गया कार्य अनेक प्रकार की अभिलाषाओं से प्रेरित होता है। फल की इच्छा, अहंकार की पूर्ति की इच्छा, सुख-भोग प्राप्ति की इच्छा, आदर-सम्मान प्रतिष्ठा की पूर्ति की इच्छा इसी का उदाहरण है और इन आधारों से उत्पन्न हुआ कर्म, राजसिक परिणाम ही लाता है। श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि ऐसे कर्मों के प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है। ❑

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

उपासना-साधना-आराधना

(गतांक से आगे)

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह मौलिकता है कि वे चिंतनशील व्यक्ति को समाज के उत्थान के लिए उसके विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रेरित कर और उनकी सहृदयता का स्मरण भी प्रत्येक गायत्री परिजन को कराती हैं। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्बोधन में वंदनीया माताजी हर साधक को, हर शिष्य को एवं हर गायत्री परिजन को उपासना, साधना एवं आराधना का मर्म समझाते हुए कहती हैं कि इन सभी आध्यात्मिक पद्धतियों का आधार समर्पण है। जो स्वयं को समर्पित करने का साहस रखता है, वही परमात्मा की अनुकंपा को पाने का अधिकारी बनता है। वंदनीया माताजी, पूज्य गुरुदेव का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहती हैं कि यदि हमें बनना ही है तो हम भगवान के उत्तराधिकारी बनें, स्वयं को समर्पित करें, अपने व्यक्तित्व को विगलित करें और एक उच्च उद्देश्य के लिए स्वयं को विसर्जित करें। यही सही अर्थों में उपासना, साधना एवं आराधना का पथ है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

जीवन में संस्कार

मेरे कहने का तात्पर्य आप समझ गए होंगे। मैंने तो आपको उदाहरण दिया है। किनका? शंकराचार्य का दिया, दो मालियों का दिया। उसका क्या मतलब था? उसका मतलब यही था कि आप अपना मार्ग चुनिए कि आपको किधर जाना है। आपके मार्गदर्शक ने आपके लिए कितनी मदद की है? कितना आपके लिए साधन जुटाए हैं? आप कल्पना नहीं कर सकते हैं।

साधन का मेरा मतलब विशुद्ध साहित्य से है। जिसमें कि आपको प्रेरणा मिलती है, जो आप दूसरों को दे सकते हैं, लेकिन आपके मन की वह संकीर्णता ही नहीं छूटती तो आप करेंगे क्या? कुछ नहीं कर सकते। चूँकि आपके अंदर वह भक्ति अभी पैदा नहीं हुई है। अभी कौन-सी भक्ति हो गई है? भक्ति पैदा हुई तो है, पर केवल मालाओं तक सीमित हो गई है। बेटे, माला करेंगे तो क्या हो जाएगा? माना कि तेरी एक की मुक्ति हो जाएगी, तो बाकी का क्या होगा? करोड़ों-अरबों लोग हैं, उनमें से एक कम हो जाएगा तो उससे क्या होगा?

जो संस्कार हम इस जीवन में लेकर के जा रहे हैं, वही संस्कार हमारे जहाँ कहीं भी हम जाएँगे, वहीं उत्पन्न होंगे। हाँ बेटे! बिलकुल होंगे, कल ही मैंने इसका उदाहरण दिया था मृत्यु और पुनर्जन्म से उसका संबंध था, उसमें एक बंदरिया का उदाहरण था, चलो मेरे मुँह पर घटना आ गई है तो सुना देती हूँ। एक बंदरिया थी और वह किसी गड़रिये के हाथ में पड़ गई। उसने कहा, मैं इसका क्या करूँगा?

मैं तो गड़रिया हूँ। उसने बंदरिया को एक विदेशी को सौंप दिया। उस विदेशी को पशु रखने का बहुत चाव था। बकरी, भैंस, गाय जाने क्या-क्या रखता था। उस बंदरिया में जो संस्कार पाए गए, वह यह पाए गए कि यह पिछले जन्म में कोई मनुष्य रही होगी। उसका हर क्रियाकलाप समझदारी भरा था। वह पशुओं के साथ जंगल में जाती तो यह देखती कि कोई पशु, कोई बकरी कहीं यहाँ रह तो नहीं गई।

बेटे! थोड़े दिन बाद उस विदेशी ने क्या किया कि जो गड़रिया उसके यहाँ रहता था, पशुओं के चराने के लिए तो उन्होंने कहा—थोड़े दिन की छुट्टी कर दूँ, देखें इस बंदरिया को। अब गड़रिया एक तरफ और बंदरिया एक तरफ। बंदरिया ने तो ऐसा कर दिखाया कि अगर कोई बकरी का बच्चा इधर-उधर रह जाता तो बंदरिया उसे ढूँढ़ने निकलती और फिर उस बकरी के बच्चे को ढूँढ़कर ले आती और जितनी देर उसको चारा खिलाना था, उतनी देर खिलाती और सबको वापस लेकर के आती।

बेटे! संस्कार ये होते हैं। जैसे हमारे इस जन्म में जो संस्कार हैं, वही हमारे अगले जन्म में जाएँगे, बिलकुल जाएँगे, इस जन्म में आप अपना परिष्कार कर पाएँगे तो अगले जन्म में भी जहाँ कहीं भी आप जाएँगे किसी भी योनि में जाएँगे, वहाँ भी आप परिष्कृत हो करके जाएँगे।

लक्ष्य के लिए समर्पण

अभी मैं एक उदाहरण बताऊँगी। उदाहरण यह कि गुरुजी ने भी एक बार अपनी माँ को चकमा दिया था। कौन-सा दिया था? बेटे, उसका संबंध रूहानियत से है और यह संकल्प बल से है कि हमको यह काम करना ही है, और काम करना है तो हम परिवार की नहीं सुनेंगे। माँ की भी एक बार की कही बात नहीं सुनेंगे। पिता की भी नहीं सुनेंगे जैसा कि ध्रुव ने, प्रह्लाद ने भी अपने पिता को ठुकरा दिया था।

उन्होंने कहा कि पिता हमको गलत बात बताएगा तो हम ऐसे पिता को भी छोड़ देंगे और माँ को भी छोड़ देंगे। बेटे! तो क्या हुआ था कि छोटी उम्र थी? कांग्रेस आंदोलन में उनको भाग लेना था। भाग तो ले रहे थे बहुत दिन से, लेकिन उस दिन उनको जाना ही था कि आज किसी भी हालत में हमको यहाँ से जाना है।

घरवाले हमें कुछ करने नहीं देंगे तो बेटे उन्होंने बहाना बनाया। घरवालों ने उन्हें कोठरी में बंद कर दिया था कि यह ऐसे नहीं मानेगा, इसी में बंद कर दो। इसी में खाना दो, जो कुछ करना है, इसी में कराओ। उन्होंने कहा कि यह अच्छी मुसीबत आ गई।

तो उन्होंने क्या काम किया? एक लोटा हाथ में लिया, अंडरवियर और बनियान पहने हुए थे और जनेऊ कान पर चढ़ाया। वह घर में माँ को ताई कहते थे, तो हम सभी उनकी माताजी को ताई कहते थे, सारे गाँव के लोग ताई कहते थे, वह सारे गाँव में बड़ी थीं। बोले ताई! हाँ क्या है? अरे किवाड़ खोल, ताई बोली बक मत, चुपचाप इसी में बैठा रह।

उन्होंने कहा—देखो, मुझे टट्टी जाना है, टट्टी जाना है तो क्या घर में जाऊँगा? बात समझ में आ गई हाँ, ठीक बात। जाने दो, उन्होंने जूते-चप्पल, कपड़े-लत्ते सब छिपा के रख दिए थे। कहा अच्छा, देखा जाएगा और उन्होंने किवाड़ खोल दिए, आखिर माँ है। माँ को इतनी तो उदारता होती है, माँ इतना थोड़ी सोच पाती है की यह क्या कर रहा है?

हाँ भई! बच्चा ही तो है, उन्होंने दरवाजा खोल दिया और बस बेटे, वे भागे-सो-भागे, उन्होंने आगरा छावनी में जा करके ही दम ली, आँवलखेड़ा, से आगरा के लिए वे रात में चले। रात में नंगे पाँव

न काँटों की खबर है, न शेर-चीते की खबर है। जंगलों से अब तो आबादी भी हो गई है। सड़क भी पक्की हो रही है। पहले जंगल-ही-जंगल था, सियार और शेर भी थे जंगल में, लेकिन बेटे उन्होंने परवाह नहीं की और जहाँ कांग्रेस की छावनी थी, वहाँ जाकर के रहे। तो मैं ये क्या कह रही थी? बेटे! आपको भी वह करना पड़ सकता है।

लक्ष्य के लिए सब समर्पित करें

लक्ष्य के लिए उद्‌देश्य के लिए आपको माँ की भी बात को ठुकराना पड़ेगा। बीबी की बात को भी ठुकराना पड़ेगा और सारे रिश्तेदारों की बात को ठुकराना पड़ेगा। किसके लिए, लक्ष्य के लिए।

बेटे! हमारी उपासना-साधना और आराधना लक्ष्यविहीन नहीं, उद्‌देश्यपूर्ण होना चाहिए, उद्‌देश्यपूर्ण होगी तो बेटे चमत्कार उत्पन्न होगा। आपके जीवन में वे चमत्कार पैदा होंगे, जो बेटे गुरुजी के जीवन में हुए हैं। अभी आपने चमत्कार नहीं देखा क्या? अरे, अभी भी नहीं देख रहे हैं, तुम्हारी आँखें बंद हैं, इसलिए नहीं देख पा रहे हो।

गुरु-गायत्री की शक्ति

आपके साथ तो शक्ति जुड़ ही रही है ना? गुरु की शक्ति जुड़ रही है, गायत्री माता की शक्ति जुड़ रही है। आप तो बड़े भाग्यशाली हैं, आपके साथ तो चार-चार हैं। चार कौन-कौन हैं? देखो दादागुरु एक, गुरुजी दो, गायत्री माता तीन और माताजी चार। अरे! आपके पीछे तो चार गुनी शक्ति है। अब भी नहीं समझोगे क्या? अभी घर पर अर्थात कीचड़ में ही रहोगे क्या? चार गुनी शक्ति को ठुकराते रहोगे क्या?

माँ की आवाज को अनसुना करोगे क्या? कान को बहरा करोगे क्या? बेटे! तो फिर मैं समझूँगी की आप बहरे हैं। फिर मेरे बेटे नहीं हो। आपने मेरी बात को नहीं सुना, आपने मेरी बात को नहीं समझा तो फिर मैं बेटे कैसे मान लूँ आपको। चलो मैं मान भी लूँगी मेरे बेटे! लेकिन आपने तो फर्ज और कर्त्तव्य को ही नहीं समझा?

आपने फर्ज और कर्त्तव्य को नहीं समझा तो जो देना होगा, वह देंगे तो सही आपको; क्योंकि आप हमारे बेटे हैं, लेकिन आपने तो नहीं सोचा कि हमारा माँ के प्रति क्या कर्त्तव्य है और क्या कर्त्तव्य हमारा गुरु के प्रति, और क्या फर्ज है हमारा मिशन के प्रति। गुरु के पाँव नहीं दबाने हैं, बेटे! गुरुजी के लिए कुछ नहीं देना, गुरुजी के हाथ-पाँव अभी खूब हट्टे-कट्टे मौजूद हैं और माताजी के लिए, माताजी के लिए साड़ी लानी है क्या? नहीं बेटे! उनके लिए भी नहीं लानी है।

हर महीने 500 रुपये आ जाता है, उसी 500 में से गुजारा कर लेते हैं। हमारा तो मुट्ठी भर का पेट है, किंतु दिखते हैं मोटे-तगड़े! पर इतना खाते नहीं हैं। जो तुम्हें दिखता है, वो तो हमारी रूहानियत है। बेटे! हमारे पास जो है, वो पर्याप्त है, उसमें हम खा भी लेते हैं और खिला भी देते हैं, हमें अपने लिए नहीं चाहिए। लेकिन आपका कर्त्तव्य है कि जिस मिशन से आप जुड़े हैं और जिस गुरु से आप जुड़े हैं, आपको नहीं समझ आता कि कितना बड़ा मिशन है। बेटे! कितना बड़ा पेट है इसका, हाथी का पेट भर जाता है, पर इसका नहीं भरता बेटा!

अभी देख 20 हाथी गए यहाँ से, कितनी भूख है उनकी। अभी और हाथी जाने वाले हैं। यह तो मैं गाड़ियों की बात बता रही हूँ आपको और जो हमारे कार्यकर्त्ता रहते हैं। उनका निर्वाह, उनके बिजली का, पानी का खरच आपको दिखाई नहीं पड़ता? हाँ! माताजी दिखाई तो पड़ता है, पर अब करेंगे क्या? कभी आपके मन में आता है क्या? कभी आपने सोचा है क्या? कभी आपने कल्पना की है

क्या? बेटे! ये कौन करा रहा है? यह सब शक्ति करा रही है और कराती रहेगी। आपके न करने पर भी काम चलेगा। आप अलग हो करके देख लीजिए, माताजी का काम रुकेगा नहीं, बल्कि और तेजी से पूरा होगा।

इनसान का नहीं, भगवान का काम

बेटे! यह इनसान का काम नहीं है, यह भगवान का काम है और भगवान का कार्य कोई भी अधूरा नहीं रहेगा। कभी अधूरा नहीं रहता। बेटे, वह बढ़ता ही रहेगा। हम तो आपकी नीयत की परीक्षा ले रहे थे। हमें क्या चाहिए? तुम्हारे न देने से भी काम चलेगा और चलते रहे हैं बेटे और आगे भविष्य में भी चलते रहेंगे, पर मैं तो आपको एक चित्रण प्रस्तुत करा रही थी की आप घर में रह रहे हैं, लेकिन आप बे-खबर हैं।

आप बे-खबर हैं कि यहाँ हमारी माँ भी रहती है क्या? घर में यहाँ हमारा पिता भी रहता है क्या? घर में यहाँ हमारे भाई भी रहते हैं क्या? इस घर में यहाँ हमारी बहन भी रहती है क्या? इस घर में कोई आवश्यकता भी है क्या? वो आप बिलकुल बे-खबर हैं, घर में भी रहते हैं, लेकिन घर से बे-खबर क्यों हैं? आपने जो पट्टी बाँध रखी है आँखों पर, इसलिए संवेदना है ही नहीं।

संवेदना हो, तो आपको अनुभव हो, किंतु संवेदना है ही नहीं तो अनुभव कैसे होगा? वह नहीं होगा और संवेदना होगी तो आपको हर पल, अपना लक्ष्य याद रहेगा। लक्ष्य याद रहेगा बेटे, तो फिर आप घर में तपोवन बना करके रहेंगे, जैसे कि बेटे गुरुजी गृहस्थ रहे हैं। बच्चे भी रहे हैं, ब्याह, शादी भी हुई है और बेटे! सारे फर्ज और कर्त्तव्य निभाते हुए भी, वे एक योगी की तरह से और तपस्वी की तरह से रहे हैं सारे जीवन भर। नहीं साहब, हमारी तो पत्नी बाधक है। हमारा तो बच्चा बाधक है। चल बक मत, पत्नी और बच्चे का नाम लेता है, वही गरीब मिल जाते हैं, पत्नी और बच्चे, सो उन्हीं का बहाना बनाता रहता है।

स्वयं को सौंपने का परिणाम

बेटे! गुरुजी मुझे माताजी कहते हैं, किस माने में उनकी माताजी हूँ, नहीं बेटे, मैं तो पत्नी हूँ उनकी, माताजी कैसे हूँ? लेकिन किसी माने में हूँ? किस माने में हूँ? बेटे! मैं उदारता के रूप में हूँ और पीठ थपथपाने के रूप में हूँ, इस रूप में हूँ कि कदम खींचा नहीं गया, आगे बढ़ाया और साथ ही खुद भी आगे बढ़े। बेटे, तो क्या बीबी-बच्चे बाधक होते हैं? बाधक नहीं होते हैं, उनको स्वरूप समझाया नहीं गया। आपने पत्नी को भोग्या के रूप में उपयोग किया है।

कहीं देवी के रूप में और संवेदना के रूप में आपने उपयोग किया होता तो बेटे! आपके साथ सहोदर भाई की तरह से होती। आपके मित्र के तरीके से होती तो आप जिधर चलाते, उधर चलती, बेटे! मुझे तो अनुभव है और मैं तो उसी तरह से

शिष्यों ने गुरु से पूछा—"गुरुदेव! साधना क्या है?"

गुरुदेव ने उत्तर दिया—"साधना का अर्थ स्वयं को अनगढ़-से-सुगढ़ बनाना है और ऐसा बनने के लिए प्रखर पुरुषार्थ करना भी इसी क्रम में सम्मिलित है। याचना, दैवी मनुहार, साधना नहीं है, बल्कि अपनी सूक्ष्म विवेचना तथा आत्मनिर्माण के लिए सतत विकास के क्रम को चलाना ही साधना है।" शिष्यों का समाधान हो गया।

चलती हूँ, पर आपमें सहूर नहीं है, सलीका ही नहीं है; उनमें तो था उनमें तो है और बेटे उन्होंने तो क्या-से-क्या बना दिया? बैठी हूँ तुम्हारे साथ कैसे क्या बना दिया, वे मेरा गुणगान करते हैं तो मैं उनका कर लेती हूँ। पूरा श्रेय उन्हीं का ही है।

यह सारा-का-सारा आपको जो दिखता है, जो हमारे कार्यकर्त्ताओं में जीवट दिखता है। किनका है, उनका स्वयं का उपार्जित किया हुआ नहीं। स्वयं का भी है, स्वयं का कितना है बेटे? उन्होंने हमको सौंप दिया। किसने? उन बच्चों ने, जो अपनी नौकरी छोड़ करके आए हैं, अपना घर छोड़कर आए हैं और अपने आप को हमें सौंप दिया। पिताजी हमने आपकी गोद में सौंप दिया, अब आपके आँचल में हमारी जिंदगी है, बेटे, तो ये बेटे छाती से लगाने योग्य हैं और जब तक जिंदा रहेंगे तब तक और मरेंगे तब तक, इसके पीछे हमारा भरपूर आशीर्वाद है। इन बच्चों के लिए। जो हमारे बच्चों ने कदम उठाया है, नसीहत सीखी है।

बेटे! गुरुजी से सीखिए। बच्चों से सीखिए। यहाँ के वातावरण से सीखेंगे तो आपकी आँखें खुल जाएँगी, भगवान करे जो आशीर्वाद मैं अभी अपने बच्चों को उनके लिए कह रही थी, वही आशीर्वाद आपके लिए भी है। बेटे! आपके लिए कंजूसी नहीं है। ये सब तो मेरे निकट हैं। आप दूर हैं, आपके लिए तो और भी ज्यादा है। बेटे! गुरुजी का है, हमारा है। हर पल आपके ऊपर आशीर्वाद की छाया बनी रहेगी, लेकिन बेटे इसके साथ-साथ आपका मनोबल भी जुड़ा होना चाहिए। आपकी क्रियाशीलता भी जुड़ी होनी चाहिए।

क्रियाशीलता इस माने में कि बेटे! प्रज्ञा का आलोक जो हम ले करके चले हैं। वह प्रज्ञा का आलोक हमारा हर घर में पहुँचना चाहिए। कोई भी घर ऐसा न रहे, जहाँ हमारा प्रज्ञा का आलोक न पहुँच पाए। यह काम आपको करना है। आप खड़े हो जाइए, जरा शक्ति तो आपमें आ ही जाए। जान तो आपमें होनी चाहिए, जान कौन पैदा करेगा, जान आप पैदा करेंगे और निर्जीव होंगे तो बेटे गुरुजी धक्का मार देंगे और माताजी भी दुत्कार देंगी। बिलकुल, चूँकि आपमें शक्ति ही नहीं है।

सक्रियता लाएँ-भगवान का प्यार पाएँ

आप निर्जीव हैं। निर्जीव मत रहिए, बेटे सक्रियता लाइए। अपने अंदर जान लाइए, फिर आप देखिए। कितना आपके ऊपर अनुदान बरसता है? बेटे! जैसा गुरुजी के ऊपर बरसा है। किनका? उनके गुरु का अनुदान बरसा है। गायत्री माता का अनुदान बरसा है बेटे! कितना बरसता जाता है, पर बेटे वे बीज की तरह से गलते ही जाते हैं। तब यह बरस रहा है, फोकट में नहीं है।

फोकट में कोई चीज नहीं होती बेटे! इसलिए मेरी आपसे प्रार्थना है। आपसे निवेदन है के बेटे आप अपनी संकीर्णता को हटा दें और उदारता को जिंदा रखिए, सक्रियता को जिंदा रखिए, आप श्रद्धा को जिंदा रखिए। श्रद्धा अभी अपूर्ण है। पूर्ण नहीं है, है तो सही, लेकिन वह अपूर्ण है। पूर्णता की ओर मैंने आपको बताया, जो-जो मैंने इसमें उदाहरण दिए हैं, वो पूर्णता की ओर जाने को हैं। पूर्णता की ओर चलिए, साधना कीजिए, आराधना कीजिए बेटे, फिर पाइए भगवान का प्यार। बेटे! हर समय आपको लगेगा कि भगवान की कितनी बड़ी दया और कितना प्यार हमारे ऊपर बरस रहा है?

कितना बरस रहा है कि उसको हम सँभाल नहीं पा रहे हैं? उसको हम सँभाल नहीं पा रहे हैं। बेटे! सही रूप में यही होता है और यही होता रहा है। नरसी मेहता के जीवन में भी यही हुआ है। हाँ बेटा, उसने समर्पण किया तो फिर नरसी मेहता कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया, वही मैं आपको बता रही हूँ। मैं ज्यादा नहीं खींचूँगी। तो मैं आपसे यह निवेदन कर रही थी बेटे कि अपने अंदर की जो

क्षुद्रता है उसको छोड़िए, उसको त्यागिए और फिर पाइएगा अपने जीवन में खुशहाली।

पाइए शांति, पाइए शक्ति, पाइए भक्ति; फिर देखिए आपके जीवन में वो शांति की दौलत, वो शक्ति की दौलत आती है कि नहीं? आप अभी पाने के लिए आए हैं, पैसा पाने के लिए आए हैं न, बच्चा पाने के लिए आए हैं न, लड़का पाने के लिए आए हैं न, बीबी को पाने के लिए आए हैं न, अरे बेटे! यह सब एक ओर रह जाएगा। आपको वह मिलेगा, वह संपत्ति मिलेगी, जिसे आप सँभाल नहीं सकेंगे, वह जीवात्मा का उत्थान आपको मिलेगा। बेटे! आपको विकास मिलेगा, जिसके सहारे आप चलेंगे और दूसरों का मार्गदर्शन कर पाएँगे। दूसरों को प्रकाश दे पाएँगे। बेटे एक तो मैंने ये कहा।

दूसरा मैंने ये कहा कि गुरुजी के अंदर एक अग्नि जलती रहती है। उस अग्नि में मैं शामिल हो गई और मेरे बच्चे शामिल न हों तो बेटे धिक्कार है। उन बच्चों के लिए धिक्कारती हूँ, जिनको मैं समझा नहीं सकी। बेटे! तुम्हारे पिता के अंदर जो अग्नि जल रही है, एक छोटी-सी चिनगारी आप भी ले जाइए। बेटे! इसको लेकर के आप जाना और अपने को बदल के जाना, जो आपकी विचारधारा और जो आपका दृष्टिकोण है, उसको बदल लो। बदलो, तोड़ो, फोड़ो, इसको हटाओ, और फिर नए हो करके जाइए और परिवर्तन लेकर के जाइए और हर्ष और उल्लास लेकर के जाइए और बेटे! पिता का और माँ का आशीर्वाद लेकर के जाइए। इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ।

। ओम् शांति ।

भिक्षु पूर्ण ने भगवान बुद्ध के चरणों में गिरकर प्रव्रज्या की प्रार्थना की। भगवान बोले—''वत्स! सब जगह समान लोग नहीं होते। कुछ तुम्हें गालियाँ भी दे सकते हैं।''

भिक्षु बोले—''भगवान! यह तो अत्यंत शुभ है। गालियाँ सहन करने से व्यक्तित्व निर्मल होता है। कम-से-कम वे मारेंगे तो नहीं।'' भगवान ने प्रश्न किया—''और यदि मारने लगें तो?'' भिक्षु बोले—''प्रभु! यह तो और भी अच्छा होगा।'' मार खाने से जन्म-जन्मांतरों से एकत्रित पापों के पंक से मुक्ति मिलेगी।

भगवान बुद्ध बोले—''यदि उन्होंने तुम्हारे प्राण ले लिए तो?'' भिक्षु बोले—''भगवान! तब मैं उनका अत्यंत उपकार मानूँगा।''

भगवान बुद्ध उन्हें आशीर्वाद देते हुए बोले—''वत्स! तुम धर्मोपदेश पर निकलो।'' लोकसेवा में ऐसे ही साहस व समर्पण की आवश्यकता होती है।

विश्वविद्यालय परिसर से —248

सांस्कृतिक विरासत का केंद्र बना विश्वविद्यालय

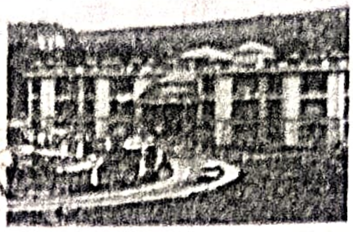

भारत की सांस्कृतिक विरासत विश्व में अपनी गहनता, विविधता और जीवनमूल्यों के कारण अद्वितीय स्थान रखती है। यह केवल परंपराओं का संग्रह नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक समग्र दृष्टि है, जो सत्य, करुणा, समरसता और सतत विकास के आदर्शों पर आधारित है।

इस अमूल्य धरोहर के संरक्षण और संवर्द्धन में देव संस्कृति विश्वविद्यालय एक प्रेरणादायक भूमिका निभा रहा है, जो आधुनिक शिक्षा को भारतीय संस्कारों से जोड़कर संस्कृति को जीवन की धारा बनाने का प्रयास कर रहा है।

इसी क्रम में देव दीपावली के पावन अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आध्यात्मिकता, संस्कृति एवं सृजनात्मकता का अद्‌भुत संगम देखने को मिला। इस पावन दिन पर विश्वविद्यालय परिसर में नवनिर्मित शिल्प '#SHANTIKUNJ' का भव्य लोकार्पण समारोह आयोजित किया गया। यह शिल्प विश्वविद्यालय की मूल दार्शनिक धारा- संस्कृति, साधना और समाज निर्माण का प्रतीक रूप में स्थापित किया गया है।

कार्यक्रम का शुभारंभ विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी एवं गायत्री विद्यापीठ की प्रबंधिका आदरणीया शेफाली पण्ड्या जी द्वारा दीप प्रज्वलन एवं वैदिक मंगलाचरण के साथ हुआ। गायत्री महामंत्र के सामूहिक उच्चारण ने संपूर्ण प्रांगण को पवित्रता, श्रद्धा और दिव्यता से सराबोर कर दिया।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय को गौरवान्वित करने हेतु अनेक विशिष्ट अतिथि उपस्थित रहे, जिनमें भूतपूर्व मुख्यमंत्री एवं हरिद्वार के माननीय सांसद श्री त्रिवेंद्र सिंह रावत जी, संन्यास आश्रम महामंडलेश्वर स्वामी विश्वेश्वरानंद महाराज तथा रूबल नागी आर्ट फाउंडेशन की संस्थापिका श्रीमती रूबल नागी विशेष रूप से सम्मिलित रहीं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए प्रतिकुलपति जी ने अपने प्रेरणास्पद विचार साझा करते हुए कहा— '#SHANTIKUNJ' मात्र एक कलात्मक संरचना नहीं, बल्कि यह हमारे गुरु-परंपरा, आध्यात्मिक अनुशासन और युग निर्माण के संकल्प का सजीव प्रतीक है। यह प्रत्येक साधक को यह स्मरण कराएगा कि देव संस्कृति का सार केवल ज्ञान-अर्जन में नहीं, बल्कि उस दिव्यता के प्रसार में निहित है, जो जीवन के हर क्षेत्र को पवित्र बनाती है।

कार्यक्रमों की श्रृंखला में विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में राज्य स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भव्य आयोजन किया गया।

इस अवसर पर राज्यस्तरीय विश्वविद्यालयीन एकल एवं समूह नृत्य प्रतियोगिता का आयोजन हुआ, जिसमें राज्य के विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्रतिभागियों ने भाग लिया। कार्यक्रम का शुभारंभ विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने दीप प्रज्वलन कर किया। तत्पश्चात प्रतिभागियों ने अपनी मनमोहक नृत्य प्रस्तुतियों से दर्शकों का हृदय जीत लिया।

प्रस्तुतियों में उत्तराखंड की सांस्कृतिक विविधता, लोक-परंपरा और एकता का सुंदर संगम देखने को मिला, जिसने वातावरण को भावनाओं और उल्लास से भर दिया। कार्यक्रम के समापन पर

प्रतिकुलपति जी ने सभी प्रतिभागियों को प्रमाणपत्र एवं पुरस्कार प्रदान किए और उनके उज्ज्वल भविष्य हेतु मंगलकामनाएँ दीं।

साथ ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में डिवाइन वैल्यूज स्कूल, इक्वाडोर से आए सदस्यों के दल का समापन समारोह आयोजित किया गया। यह दल विश्वविद्यालय में अध्ययन प्रवास पर रहा।

इस अवधि में प्रतिभागियों ने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट की एवं आयुर्वेद, औषधि विज्ञान, यज्ञोपचार, मर्म चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा एवं अन्य भारतीय वैदिक ज्ञान-परंपराओं का गहन अध्ययन किया।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने लिथुआनियन भाषा प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूर्ण किया। इस पाठ्यक्रम का संचालन लिथुआनिया की प्रख्यात शिक्षिका सुश्री रासा वलिएने द्वारा किया गया।

समापन समारोह के अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने सभी विद्यार्थियों को उनकी उपलब्धि पर बधाई दी एवं प्रमाणपत्र प्रदान किए। प्रतिकुलपति जी ने सुश्री रासा वलिएने को भी उनके समर्पण व उत्कृष्ट शिक्षण के लिए धन्यवाद ज्ञापित किया।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में बाल संत महामंडलेश्वर स्वामी रमेश्वरानंद सरस्वती जी महाराज (महानिर्वाणी अखाड़ा) का आगमन हुआ एवं प्रतिकुलपति जी से भेंट का क्रम संपन्न हुआ। अपने प्रवास के दौरान स्वामी जी ने विश्वविद्यालय में चल रही शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक गतिविधियों का अवलोकन किया। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी एवं स्वामी रमेश्वरानंद सरस्वती जी महाराज के मध्य भारतीय संस्कृति, अध्यात्म एवं राष्ट्र पुनर्निर्माण के विविध पहलुओं पर सारगर्भित चर्चा हुई।

हाल ही में इटली के योग संस्थान सर्व योगा इंटरनेशनल की संस्थापिका डॉ० एंटोनेटा रोज़ी अंतरराष्ट्रीय प्रतिनिधिमंडल समेत विश्वविद्यालय पहुँची। विश्वविद्यालय पहुँचने पर प्रतिनिधिमंडल ने प्रतिकुलपति जी से सौहार्दपूर्ण भेंट की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की उस दूरदृष्टि को प्रतिकुलपति जी ने प्रतिनिधिमंडल से साझा किया, जिसके अंतर्गत आधुनिक शिक्षा में आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश कर व्यक्तित्व का विकास किया जाता है एवं यह भी बताया कि योग विश्व शांति और रूपांतरण का सशक्त माध्यम है, जिसकी आवश्यकता आज वैश्विक स्तर पर महसूस की जा रही है।

आईटीएम विश्वविद्यालय ग्वालियर द्वारा विगत दिनों आयोजित राष्ट्रीय अंतरविश्वविद्यालय लघु वीडियो प्रतियोगिता में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा निर्मित डॉक्यूमेंट्री फिल्म ने राष्ट्रीय स्तर पर स्थान प्राप्त किया।

इस उपलब्धि ने विश्वविद्यालय को गौरवान्वित किया है। प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त करने के उपरांत विजेताओं ने प्रतिकुलपति जी से भेंट की एवं आशीर्वाद प्राप्त किया। ❑

एक व्यक्ति समुद्र के किनारे लहरों के साथ बहकर आती सीपों, मछलियों को उठा-उठाकर वापस गहरे पानी में फेंक रहा था। दूसरे व्यक्ति ने उसे ऐसा करते देख टोककर कहा—''तुम्हारे ऐसा करने से क्या फरक पड़ेगा ? कल दूसरे हजारों प्राणी यहाँ आकर बहने लगेंगे।'' वह व्यक्ति बोला—''और किसी पर फरक न भी पड़े, पर जिस एक प्राणी का जीवन बचेगा, उसके जीवन पर तो निश्चित रूप से फरक पड़ेगा।'' छोटे-छोटे शुभ कार्य ही बड़े प्रभावों को जन्म देते हैं।

साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला

धर्म का जीवन-बोध

धर्म का जीवन-बोध युग का नया सत्य बनेगा। 'धर्म' हर युग में बहुप्रचलित शब्द रहा है। वर्तमान युग में इस शब्द का प्रचलन पहले से कहीं अधिक तीव्रता और तेजी से बढ़ा है। बस, अर्थ खोता जा रहा है, अनर्थ प्रचारित हो रहा है। धर्म के मत और पथ अनेकों हैं, इनमें से किसी-की-किसी से महत्ता कम नहीं है।

सभी के प्रवर्तकों ने धरती के अलग-अलग भू-भागों में जन्म लेकर अपने युग की समस्याओं का समाधान किया। अपने समय के सवाल सुलझाए। मानवता की राह के काँटे-कंकड़ हटाए। अगर हम सभी मतों व पथों के प्रवर्तकों के व्यक्तित्व व कर्तृत्व को गहराई से समझने का प्रयास करें, तो यही पाते हैं कि इनमें से प्रत्येक परम प्रकाश परमात्मा का प्रकाश लेकर आया था। हरेक दैवी चेतना की दिव्यता को लेकर जन्मा था। सभी ने बिना किसी भेदभाव के सभी को समान रूप से प्रेम का प्रकाश वितरित किया।

इसे मानव समझ की विचित्रता और विडंबना कहेंगे कि प्यार-प्यार-प्यार जिनका जीवन-मंत्र रहा, उनके नाम पर विवाद-फसाद किए जा रहे हैं। उनके अनुसरण का दंभ भरने वाले दंगे कर रहे हैं। यह सब है तो आश्चर्यजनक किंतु साथ में सत्य भी है। अब इस संदर्भ में प्रश्नवाचक प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों हो सका और ऐसा क्यों हो रहा है? वर्तमान के इस युग-प्रश्न का उत्तर बस, इतना है कि 'धर्म' शब्द का अर्थ और यथार्थ समझा नहीं गया। इसके उद्‌देश्य को आत्मसात् करने के बजाय भस्मसात् करने की कोशिश होती रही। असुरों के उद्धारक राम, वन्य जातियों में भी निम्न समझी जाने वाली, शबर जाति में जन्म लेने वाली शबरी को 'माँ' कहने वाले राम, उसके जूठे बेर खाकर तृप्ति का अनुभव करने वाले प्रभु राम पर विवाद-फसाद खड़े करना; जैसे उनकी मर्यादाओं को तार-तार कर देना है।

प्रभु श्रीराम ने जन-मन के रंजन के लिए प्रजा के जीवन के लिए अपने सभी सुखों का सर्वथा परित्याग कर दिया। जगत् और जीवन के सभी तरह के कलंक की कालिख व कालिमा मिटा देने की क्षमता रखने वाले राम के नाम की महिमा का निरादर, मानव के बुद्धिहीन हो जाने की कथा कहता है। बात केवल परमात्मा के राम-नाम एवं राम रूप की नहीं है। यह कथा तो प्रभु के प्रत्येक नाम एवं रूप की है। फिर वे चाहे परमात्मा के परम प्रकाश का पैगाम देने वाले पैगंबर हों, अथवा परमात्मा के प्रकाश से जीवन व जगत् को पावन तीर्थ बनाने वाले तीर्थंकर हों। ईश्वरपुत्र ईसा हों अथवा गुरुज्ञान देकर शिष्यों को सिखावन देकर सिख बनाने वाले गुरु साहिबान। प्रत्येक की कथा का कथन एक जैसा ही है। महिमा सबकी महान है। निंदा प्रत्येक की निंदनीय है।

सभी ने धर्म का सत्य बताया है। अलग-अलग शब्दों में, अलग-अलग भाषा में, अलग-अलग भूमि में सबने धर्म का जीवन-बोध समझाया है। धर्म जीवन-बोध है और जीवन-बोध धर्म है। जिसने धर्म को समझा, उसने जीवन को समझा और जिसने जीवन को समझ लिया, उसने धर्म को समझ लिया। तभी तो महात्मा बुद्ध जो अपने भर्ग से स्वयं भगवान

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

हो गए, अपनी ईश्वरीयता से स्वयं ईश्वर हो गए। उन्होंने अपनी देशना, अपने उपदेशों को बस, जीवन पर केंद्रित रखा। अपनी महान साधना से उन्होंने जीवन को गहराई व गहनता से समझा। उसके प्रत्येक आयाम को अनुभव किया। यह जान-समझकर उन्होंने जीवन जीने की कला सिखाई। धर्म को जीवन विद्या के रूप में प्रचारित प्रतिष्ठित कर उन्होंने एक ही सच कहा—'एष धम्म सनंतनो', यही धर्म सनातन है। उनकी जीवन की कथा-गाथाओं ने 'धम्मपद' का स्वरूप प्राप्त किया।

इन सभी सच का सार यही है—जो धर्म का जीवन-बोध स्वरूप जान सका, वही धर्म को जान सका। अपनी समग्रता में जीवन क्या है? इसके बोध की विधि क्या है?—इसकी अनुभूति धर्म है। जब हम जीवन को जानने का प्रयास करते हैं, तो इसके अनेकों आयाम हमारे सामने आ जाते हैं। इनमें से कुछ दृश्य हैं तो कुछ अदृश्य। सबसे पहले हमारे सामने जीवन शरीर के रूप में प्रकट-प्रत्यक्ष होता है। यह शरीर जन्म लेता है और बचपन, यौवन एवं वृद्धावस्था की वृद्धि को प्राप्त कर मृत्यु में समा जाता है। जाग्रत जिज्ञासा यह सवाल पूछती है कि क्या शरीर ही जीवन है? यदि हाँ, तो फिर इसकी संचालन प्रक्रिया क्या है? तो उत्तर में हमें प्राण का परिचय प्राप्त होता है। यह प्राण ही शरीर में ऊर्जा व जीवनीशक्ति के रूप में शरीर को जीवित रखता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि शरीर व प्राण मिलकर जीवन को परिभाषित करते हैं। तब फिर हर्ष-शोक की कथा क्या है? इस प्रश्न का उत्तर मन में समाया है। मन के विचार, भाव, स्मृतियाँ आदि सभी मिलकर जीवन की दशा और दिशा का नियमन-निर्धारण करते हैं। इस मन की परतें कुरेदने पर बुद्धिमत्ता प्रदान करने वाली बुद्धि के अनायास दर्शन हो जाते हैं। तब फिर सवाल यह उठ खड़ा होता है कि यदि सभी का जीवन समान रूप से शरीर-प्राण-मन के सूत्र में पिरोया है, तो फिर इस समता में भिन्नता कहाँ से आई? अलग-अलग मनःस्थिति व अलग-अलग परिस्थितियाँ कैसे बनीं? यह प्रश्न चित्त के चिंतन एवं चेतना के दर्शन कराता है। इसकी व्यापकता व गहनता में हमें कर्मराशि-संस्कार व प्रारब्ध का परिचय मिलता है।

जीवन के इन आयामों की अनुभूति पाकर जिज्ञासा यह जगती है कि इन सभी की चेतनता कहाँ से चैतन्य होती है? इसका आधार क्या है? तब हमें आत्मा का आत्मबोध मिलता है। जीवन के ये सभी आयाम कहाँ से प्रेरित और प्रभावित होते हैं? इनमें से प्रत्येक आयाम के सूत्र कहाँ से, कैसे, किस तरह से जुड़े हैं? तब देह, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त का जुड़ाव—प्रकृति की व्यापकता में अनुभव होता है।

'धर्म' शब्द का अर्थ और यथार्थ समझा नहीं गया। इसके उद्देश्य को आत्मसात् करने के बजाय भस्मसात् करने की कोशिश होती रही।

बात जब आत्मा की व्यापकता की होती है, तो परमात्मा की परम चेतना की अनुभूति होती है। इस अनुभूति का अनुभव हमसे यह कहता है कि देह, प्राण, मन, बुद्धि व चित्त के आयामों से प्रकृति प्रेरित, प्रभावित, परिवर्तित व प्रवर्तित होती है; लेकिन आत्मा में हमें सदा ही परमात्मा का स्पर्श व एकात्मता मिलती है। जबकि आत्मा व प्रकृति के इन आयामों की गाँठ हमारा अपना अहं है। इन सबको सूक्ष्मता, समग्रता व संपूर्णता में जानना-जानने का प्रयास करना और जान लेना जीवन-बोध है।

यह आसानी से नहीं होता। प्रायः देह में अटकने एवं मन में भटकने में ही हमारी जीवन

अवधि क्षीण हो जाती है। इस अवधि में प्राण-पोषित होने के बजाय हमारे जीने के रंग-ढंग के कारण शोषित होता रहता है। ऐसा केवल इसलिए होता है; क्योंकि हमें सही से जीना नहीं आता है। जीने के ढंग हम नहीं सीख पाते हैं। प्रकृति से पोषित होते हुए प्रकृति को पोषित करने की सिखावन हम नहीं सीख पाते हैं। यह हमें धर्म सिखाता है। जीवन जीने की कला, कुशलता हमें धर्म से मिलती है।

इतना ही नहीं, जब धर्म—जीने के सही तौर-तरीके सिखाने के साथ आत्मा की अनुभूति का ज्ञान देता है; तो यही जीवन-जीने की कला व कुशलता जीवन-विद्या बनकर प्रकट होती है। प्रकृति के साथ जीवन-जीने का ज्ञान 'जीने की कला' है और परमात्मा के साथ आत्मा की एकात्मता की अनुभूति जीवन-जीने की विद्या है। जीवन-विद्या में धर्म का जीवन-बोध समग्रता से प्रतिष्ठित है।

यही धर्म है और धर्म जीवन का सार है। अन्य सभी बातें, धर्म से जुड़े अथवा जोड़े गए सच बस, धर्म का कलेवर हैं। इसका बाहरी आवरण हैं। हम सबकी, प्रायः सारी मानव जाति की समस्या यह है कि हमने कलेवर और आवरण को सब कुछ मान लिया है और सार को निस्सार समझ बैठे हैं। यह तो वही बात हुई, जैसे कोई नारियल का खोल खाने लगे और उसकी गिरी व जल को फेंक दे। कुछ इस तरह जैसे हम सब्जियों व फलों के छिलकों को तो अपना भोजन मान लें और इसके गूदे व रस को फेंक दें। अब केले के छिलके को खाकर अंदर के केले को फेंकते रहना बुद्धिमानी या समझदारी नहीं होगी, लेकिन अभी की स्थिति में यही नासमझी की जा रही है और इसको समझदारी मानकर झगड़े-दंगे किए जा रहे हैं।

वर्तमान का यह सच भविष्य में रहने वाला नहीं है। नवयुग में धर्म- जीवन का बोध बनेगा। तब धर्म के नाम पर विवाद-फसाद करने वालों पर लोग उसी तरह से हँसा करेंगे, जैसे आज हम सब बंदरों की करतूतों एवं कारनामों पर हँसते हैं। इस तरह की बातें बदले हुए समय में हास-परिहास व उपेक्षा-अवमानना का विषय बनेंगी। तब ऐसा करने का प्रयास करने वाले अपनी अवमानना, उपेक्षा से घबराकर कहीं किसी कोने में अपनी झेंप मिटाते

प्रायः देह में अटकने एवं मन में भटकने में ही हमारी जीवन अवधि क्षीण हो जाती है। इस अवधि में प्राण पोषित होने के बजाय हमारे जीने के रंग-ढंग के कारण शोषित होता रहता है। ऐसा केवल इसलिए होता है; क्योंकि हमें सही से जीना नहीं आता है। जीने के ढंग हम नहीं सीख पाते हैं। प्रकृति से पोषित होते हुए प्रकृति को पोषित करने की सिखावन हम नहीं सीख पाते हैं। यह हमें धर्म सिखाता है। जीवन जीने की कला, कुशलता हमें धर्म से मिलती है।

दिखाई देंगे। सभ्य समाज का समझदार जन-जीवन उनको हर तरह से अनसुनी करेगा।

यह सारी संभावना मानव के तन-मन-जीवन में अवतरित होने वाले प्रकाश के कारण संभव हो सकेगी। उस समय मानवता के विचार व व्यवहार में सभी धर्मों की एकता, एकात्मता स्वयं सिद्ध होती दिखाई देगी। धर्म जीवन का बोध बनकर मानव-धर्म या विश्व-धर्म का रूप लेगा। नैतिकता के आत्मानुशासन को लोग इसकी प्राथमिक कक्षा के रूप में सहज अपनाएँगे। ❑

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

अपनों से अपनी बात

प्रज्ञा साहित्य को क्षेत्रों में पहुँचाना- युग की आवश्यकता

इन दिनों प्रज्ञा साहित्य के श्रेष्ठ स्वरूप को युवा सृजनशीलों द्वारा लोकमानस के परिष्कार, परिवर्तन एवं महापुरुषत्व संयोग के लिए बढ़ावा मिल रहा है। यह एक स्वागत योग्य संकेत है कि लोग ठोस दिशा में कार्य कर रहे हैं। विश्वभर के गायत्री परिवार के केंद्रों द्वारा जिस रूप में योजनाबद्ध ढंग से प्रेरणादायक विचारों का प्रसार हो रहा है, उससे स्पष्ट होता है कि 'युग निर्माण योजना' के बीज फिर से अंकुरित हो रहे हैं।

यह प्रक्रिया यदि और सशक्त व सुनियोजित हो, तो वह दिव्य चेतना का संचार कर सकती है, जिसकी आज नितांत आवश्यकता है। आज का युग विभिन्न दृष्टिकोण से संकटग्रस्त है। सामाजिक, नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक पतन चरम सीमा पर है। ऐसे में युवावर्ग को दिशा देने वाला प्रेरणादायक साहित्य ही वह साधन हो सकता है, जो इस दुर्गति से उबारने का कार्य कर सके।

बच्चों, युवाओं, महिलाओं, शिक्षकों और नीति-निर्माताओं तक यदि इस प्रकार का साहित्य सही ढंग से पहुँचे, तो वह मनोभूमि को बदलने में सहायक सिद्ध हो सकता है। विशेषतः युवाओं को समझाने, प्रेरित करने और उन्हें दिशा देने हेतु प्रज्ञा साहित्य को नई भाषा, नए शिल्प और सशक्त प्रस्तुति में ढाला जाए तो उसका प्रभाव और भी व्यापक होगा।

इस परिवर्तन के लिए, लेखन की भाषा, विषय की प्रस्तुति और साहित्य की दृष्टि को समसामयिक बनाना आवश्यक है। जैसे विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में नवाचार हो रहे हैं, वैसे ही साहित्य में भी रचनात्मक प्रयोग आवश्यक हैं।

यह 'साहित्य का नवजागरण' तभी संभव है, जब लेखक, कलाकार और प्रकाशक नई प्रेरणा और उत्तरदायित्व के साथ आगे आएँ। महापुरुषों की वाणी, उनकी जीवन-दृष्टि और उनके कार्यों का सम्यक प्रस्तुतीकरण इस युग-परिवर्तन का आधार बन सकता है।

जिनके पास लेखन की प्रतिभा है, वे इस कार्य को अपने उत्तरदायित्व के रूप में लें, तभी यह प्रयास सार्थक हो सकेगा। अंततः जन-जन तक विचारक्रांति पहुँचाने के लिए प्रज्ञा साहित्य को हर उस भाषा, माध्यम और क्षेत्र में पहुँचाना होगा जहाँ से मानसिक और सामाजिक परिवर्तन की संभावना हो।

यही युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। समय-समय पर कुछ विशेष परिस्थितियाँ किसी भाषा के विकास और साहित्यिक अभिव्यक्ति के नए द्वार खोलती हैं। ठीक ऐसा ही एक समय उस युग में आया जब भारत के चिंतन, ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत को अन्य भाषाओं में व्यक्त करने की आवश्यकता महसूस की गई।

उन दिनों विशेष भाषा-संस्थाएँ नहीं थीं, फिर भी कुछ लेखकों ने अनुवाद के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया। हिंदी लेखकों को यह समझना होगा कि साहित्य का एक बड़ा उद्देश्य अनुवाद के माध्यम से सांस्कृतिक आदान-प्रदान करना भी है। भारत जैसे बहुभाषी देश में यह कार्य और भी आवश्यक हो जाता है, ताकि एक क्षेत्र की श्रेष्ठ विचारधारा दूसरे क्षेत्र तक पहुँच सके।

यह तभी संभव है, जब साहित्यकारों में इस कार्य के प्रति भावनात्मक जुड़ाव हो। अनुवाद केवल शब्दों का स्थानांतरण नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक संवाद है, जिसके लिए लेखक को दोनों भाषाओं के संस्कारों और भावनाओं की गहरी समझ होनी चाहिए। गायत्री परिवार में इस प्रकार के अनुवाद कार्य की बड़ी आवश्यकता है, जिससे भारतीय भाषाओं के बीच में सार्थक संवाद हो सके एवं पूज्य गुरुदेव की विचार चेतना जन-जन तक पहुँच सके। इन दिनों देश की विभिन्न भाषाओं में उत्कृष्ट साहित्य रचा जा रहा है, जिसे हिंदी में अनूदित कर एक साझा राष्ट्रीय साहित्य की रचना की जा सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि योग्य लेखक इसे अपने जीवन का मिशन मानकर आगे आएँ। अनुवाद के कार्य में जितनी संजीदगी और सच्चाई होगी, उतना ही वह पाठकों को प्रभावित करेगा। □

महर्षि परशुराम से बढ़कर संपूर्ण आर्यावर्त में धनुर्विद्या का जानकार कोई न था। धनुर्विद्या में प्रवीणता प्राप्त करने के उद्देश्य से कर्ण उनका शिष्यत्व प्राप्त करने हेतु उनके पास पहुँचा। हैहयवंशीय मदांध क्षत्रिय राजाओं को समूल नष्ट करते समय परशुराम ने प्रतिज्ञा की थी कि वे कभी किसी क्षत्रिय को अपना शिष्य नहीं बनाएँगे। कर्ण को उनकी प्रतिज्ञा ज्ञात थी, सो उसने अपनी पहचान छिपाते हुए, परशुराम से दीक्षा ले ली। परशुराम ने कर्ण को शिष्य मान, धनुर्विद्या में पारंगत करना प्रारंभ किया। कर्ण कुशाग्र बुद्धि थे, सो सभी विद्याओं को शीघ्र सीखते चले गए।

एक दिन परशुराम कुछ थककर, कर्ण की गोद में सिर रखकर सो गए। तभी एक विषैला कीड़ा आकर कर्ण की जाँघ पर बैठ गया और उन्हें दंश मारने लगा। कर्ण उसका दंश सहन करते रहे, पर अपने स्थान से जरा-सा भी न हिले। उन्हें डर था कि उनके हिलने से कहीं गुरु की नींद न टूट जाए, परंतु कीड़े के दंश से निकला रक्त परशुराम के गाल पर जा लगा तो वे उठकर बैठ गए। सारी स्थिति का अवलोकन करते ही वे समझ गए कि कर्ण क्षत्रिय हैं।

उन्होंने कहा—"वत्स! मैं तुम्हारे साहस व गुरुभक्ति से प्रसन्न हूँ, पर तुम्हारे असत्य वचन पर मेरी प्रतिज्ञा को तोड़ने का अपराध भी कम नहीं है। अतः जहाँ तुम अपनी गुरुभक्ति के कारण भारतवर्ष में धनुर्विद्या के सबसे बड़े योद्धा बनोगे तो वहीं तुम्हारे असत्य बोलने के कारण मेरा शाप है कि तुम उस समय अपनी विद्या को भूल जाओगे, जब इसकी सर्वाधिक आवश्यकता होगी।" ऐसा ही हुआ। कर्ण महाभारत युद्ध में अपने रथ के पहिये को कीचड़ से बाहर निकालते समय अपनी विद्या भूल गया और वही उसकी मृत्यु का कारण बना।

जन्म शताब्दी वर्ष आ गया

जन्म शताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया।
सद्गुरु का अनुपम शुभ चिंतन, ही जन-जन के हृदय समा गया॥

प्रखर शिष्य ही गुरु कार्य को, दिनचर्या का अंग बनाते।
अनुकरणीय कृतित्व बनाकर, युवजन को आदर्श दिखाते॥
चमक उठा उसका जीवन, जो पारस स्पर्श पा गया।
जन्म शताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया॥

देव संस्कृति के निर्माता, यज्ञ पिता गायत्री माता।
अन्य नहीं कोई हर जन ही, निज जीवन के भाग्य विधाता॥
आत्म-विजेता वही कि जिसको, जीवन संघर्ष भा गया।
जन्म शताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया॥

काया तो मानव की पाई, पर चिंतन से रहे अधूरे।
सद्गुरु का सान्निध्य मिला तो, हो गए सकल मनोरथ पूरे॥
समयदान और अंशदान कर, जप-तप का उत्कर्ष पा गया।
जन्म शताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया॥

सद्विवेक अपनाया हमने, कुरीतियों से नाता टूटा।
युग-साहित्य के स्वाध्याय से, सच्चिंतन-धन सबने लूटा॥
भक्त वही जो जनसेवा में, ही निज प्रभु का दर्श पा गया।
जन्म शताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया॥

कुप्रवृत्तियाँ दूर हटाकर, सही दिशा में मन को मोड़ा।
मित्रों व रिश्ते-नातों को, सद्गुरु के चिंतन से जोड़ा॥
सघन तमस् में भ्रमित जगत् यह, ऋषिवर का आदर्श पा गया।
जन्म शताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया॥

—चक्रेश पाण्डेय

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

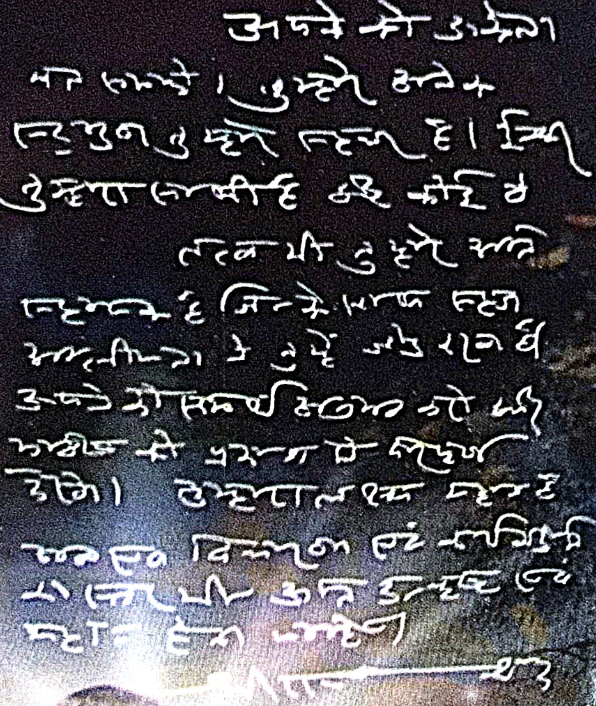

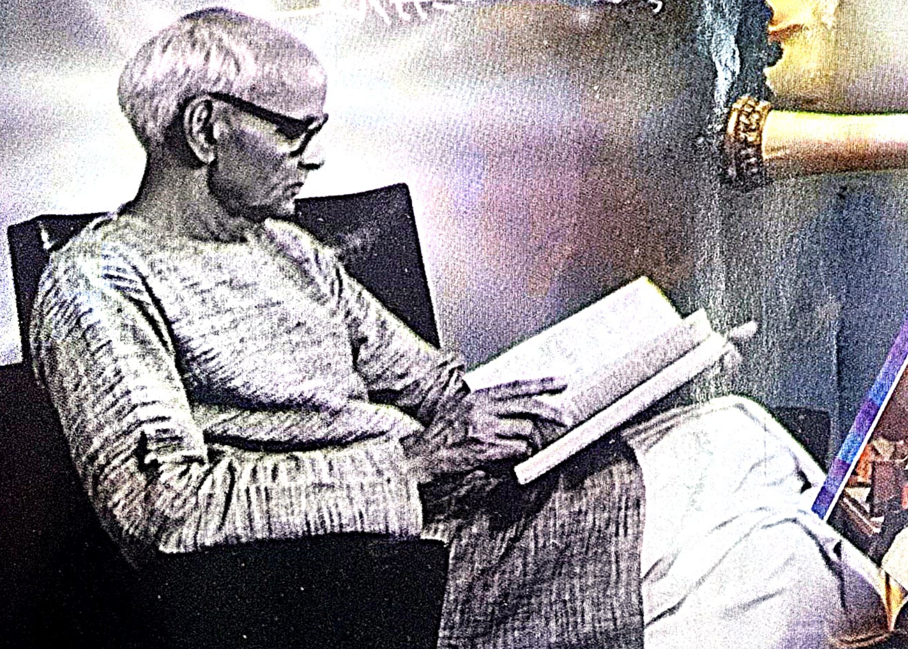

खंड – 14

गायत्री-साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

गायली महामंल अनादिकालीन प्रथम ऋचा है और यह महामंल ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है, इसे भली प्रकार समझे बिना इसकी साधना का लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसके वैज्ञानिक आधार समझने के लिए जानें—

- गायली-साधना से शक्तिकोषों का उद्भव कैसे ?
- गायली-साधना में दिव्य-संकेतों की प्राप्ति !
- गायली महामंल की रहस्यमयी शक्ति।
- गायली महामंल और ध्वनि-विज्ञान।
- महामंल की वैज्ञानिकता।